समर्पण

—:—

श्री पूज्य पिता जी के चरण-

कमलों में,

तथा

सहृदय रसिकों के

पाणि-पल्लवों-

में ।

वेणी-संहार के पात्र।

पुरुष।

सूत्रधार—प्रधान नट।

पारिपार्श्विक—सूत्रधार के साथ बातचीत करने वाला नट।

श्रीकृष्ण।

भीम
अर्जुन
नकुल
सहदेव
युधिष्ठिर } प्रसिद्ध पाँच पाण्डव। युधिष्ठिर नायक है।

जयंधर—(मैत्रेय) पाण्डवों का कंचुकी।

विनयंधर—दुर्योधन का कंचुकी।

दुर्योधन—कौरवों का राजा—प्रति नायक है।

रुधिरप्रिय—पाण्डवों का पक्षपाती राक्षस।

अश्वत्थामा—द्रोणाचार्य का पुत्र।

अश्वसेन—द्रोण का सारथी।

कृपाचार्य—द्रोण का साला और अश्वत्थामा का मामा।

कर्ण—कौरवों की ओर का वीर।

सुन्दरक—कौरवों का दूत।

सारथी—दुःशासन का सारथी।

धृतराष्ट्र—दुर्योधन का पिता।

संजय—धृतराष्ट्र का सारथी।

बुधक—युधिष्ठिर का दास।

पांचालक—पाण्डवों का दूत।

राक्षस—दुर्योधन का मित्र।

स्त्रियाँ।

द्रौपदी—पाण्डवों की स्त्री यहाँ नायिका है।

बुद्धिमती—द्रौपदी की दासी।

भनुमती—दुर्योधन की स्त्री। यहाँ प्रति नायिका है।

सुवदना—भानुमती की सहेली।

तरलिका—भानुमती की दासी।

दुःशला—दुर्योधन की बहिन।

जयद्रथ की माता।

वसागंधा—रुधिरप्रिय की स्त्री राक्षसी।

गान्धारी—दुर्योधन की माता।

प्रतिहारी—(दुर्योधन की)

विहङ्गिका—कौरवों की दासी।

——:——

"वक्तव्य"

सहृदय पाठक-वृन्द !

यद्यपि, इस स्वप्नमय जगत् में, सभी मनुष्य, निरन्तर अपने जीवन को सुखमय बनाने की धुन में लगे रहते हैं, और उसके लिये नित्य अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार नवीन-साधनों का निर्माण भी करते रहते हैं, किन्तु रसिकों के लिये, काव्य से अन्य ऐसी कोई वस्तु नहीं — जो उनके अन्तरंग में, आनन्द की पुण्य-मन्दाकिनी बहा सके ! काव्य का अनुशीलन करने-वाले रसिकों का मन, विषयान्तरों से हटकर, केवल आत्मा में ही, विलीन हो जाता है — सचमुच ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेता है।

काव्य का स्वरूप

अब प्रश्न यह उठता है कि—वह काव्य, है क्या वस्तु ?—जिससे कि मानवों के श्रान्त-मन में, भगवती कल्लोलिनी आनन्द — मन्दाकिनी, अति वेग से प्रवाहित होने लगती है ? साहित्य-दर्पण-कार का कहना है कि,—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" अर्थात् रसात्मक वाक्य का नाम ही काव्य है। वह काव्य तीन प्रकार का होता है। पद्यमय, गद्यमय, और मिश्र। पद्यमय—जैसे "रघुवंश" आदि। गद्यमय—"कादम्बरी" आदि। और मिश्र—"शाकुन्तला" आदि। मिश्र-काव्य के दो भेद हैं, दृश्य और श्रव्य। श्रव्य-काव्य चम्पू कहलाता है, और दृश्य का नाम रूपक है।

यों तो सभी काव्य,सहृदय रसिकों के मन में, आनन्द का पुनीत स्रोत बहा देने की सामर्थ्य रखते हैं,परन्तु, दृश्य-काव्य ही—उनमें, अधिक श्रेष्ठ होते हैं। क्योंकि ये समाज के सम्मुख उन २ घटनाओं को ला उपस्थित करते एवं दर्शकों के मन को, रसों को अविरल-वृष्टि से, परिप्लावित कर देते हैं। भिन्न २ मनुष्यों के भिन्न २ चरित्रों का, नटों के द्वारा अभिनय, हठात्—प्रेक्षकों के हृदय पर, जादू का असर करता है। परिणाम यह होता है कि वे अपने स्वरूप को बिलकुल भूल जाते हैं, और उनके दिलों में, सुख-सरिता इतने वेग से बहने लगती है कि, वह—वहाँ न समाकर—सिर का हिन्डोल बना देती है। संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं, जो कि, रंग-मंच पर खिलते-नाटक को देख, आनन्द-उमंग में न झूलने लगे। भला, चार्ली-चेप्लिन का रहस्य-पूर्ण चेहरा, और मिस कज्जन का, रम्भा का पार्ट खेलते समय, निराशा तथा करुणा से लबालब भरा हुआ मधुर संगीत, किस कठोर-दिल को नहीं मोह लेता? कवि-कुल-गुरु, कविता-कामिनी-विलास कालिदास का यह कथन, बिलकुल ठीक है कि "नाट्य' भिन्नरुचे र्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्"।

नाट्य, रूप, रूपक और दृश्य-काव्य—ये चारों शब्द पर्याय-वाची हैं। दृश्य-काव्य, रूपक और उपरूपक-भेद से दो प्रकार का होता है। रूपक के दस भेद हैं। नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन इत्यादि। नाटक के दो प्रकार हैं। एक नाटक और दूसरा महानाटक। "शकुन्तला" नाटक है "बालरामायण" महानाटक। प्रकरण—जैसे "मृच्छकटिक"। भाण—पंचायुध प्रपंचादि। और प्रसहन—"लटकमेलक" इत्यादि। उपरूपक अठारह प्रकार का होता है,—नाटिका, सट्टक, गोष्ठी, त्रोटक इत्यादि।

नाटिका—जैसे "रत्नावली"। सट्टक—जैसे 'कर्पूरमंजरी"। गोष्ठी—"रैवतमदनिकादि"। और त्रोटक—"विक्रमोर्वशी" इत्यादि।

अभिनयात्मक रूपक के भी, रस-भेद से, नायक-भेद से और इति-वृत्त—भेद से इतने भेद हो जाते हैं। रस—आठ प्रकार के होते हैं,—शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स तथा रौद्र। कोई शान्त को भी नववाँ रस मानने हैं। दूसरों के मत में वत्सल नाम का भी दसवाँ रस होता है। राजा भोज तो कहते हैं कि—"शृङ्गारमेव रसनाद् रस मामनामः" अर्थात् रसन से—आस्वादन करने से, शृङ्गार ही केवल एक रस है। और रसों को वे रस ही नहीं समझते। क्योंकि उनका आस्वादन ही नहीं होता—माना जाय तो उन्हें रस कैसे माना जाय? रसों के भेद से, रूपकों में भी भेद पड़ जाता है।

जिस फल को उद्देश्य करके कार्य प्रारम्भ किया जाता है—उस फल के स्वामी को "नायक" कहते हैं। इसे ही अधिकारी और नेता भी

नायक का स्वरूप

कहते हैं। जैसे युधिष्ठिर। नायक के जो प्रतिकूल हो, वह प्रतिनायक कहलाता है। जैसे दुर्योधन। नायक चार प्रकार के होते हैं। धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त। धीरोदात्त—जैसे युधिष्ठिर। धीरोद्धत—जैसे भीम। धीर-ललित—(स्वप्न-वासवदत्त में) जैसे वत्सराज। और धीर-प्रशान्त—(मालती-माधव में)—जैसे माधव। अब रहा इति-वृत्त। यह भी रूपकों के भेद में प्रयोजक होता है। इसे ही नाट्य में वस्तु भी कहते हैं। वास्तव में, यही नाटक का शरीर है। यह दो प्रकार का होता है—आधिकारिक और प्रासङ्गिक। नायक—सम्बन्धी

इतिवृत्त को आधिकारिक कहते हैं, और जो प्रसङ्ग-वश, किसी अन्य का भी इतिवृत्त, नायक के इतिवृत्त में सहायक होता है—वह प्रासङ्गिक कहलाता है। जैसे रामायण में सुग्रीव-चरित्र।

काव्य और इतिहास में भेद

जिसमें केवल रस ही मुख्य हो—उसे काव्य कहते हैं। और जिसमें सिर्फ़ गुज़री बातों का वर्णन हो, वह इतिहास कहलाता है। यही काव्य और इतिहास में फ़र्क़ है।

संस्कृत-नाटक-रचना का प्रयोजन

संस्कृत-नाटक-निर्माण का प्रयोजन, एक मात्र मनो-विनोद ही नहीं है, किन्तु, इससे भी विभिन्न और कहीं अधिक श्रेष्ठ है। नाट्य-शास्त्र में लिखा है:—

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।
नानाभावोपसंपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्॥
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्॥
उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।
हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत्॥
दुःखार्तानां समर्थानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम्॥
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति॥
न तच्छ्रुतं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाटके यन्न दृश्यते॥

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥

अभिप्राय यह है कि "संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो नाटक में न दीखती हो। क्या विद्या, क्या कला, क्या शिल्प और क्या कोई काम सब नाटक में दीख पड़ता है। नाट्य-कार कहते हैं कि यह नाट्य धर्म, यश और आयु को बढ़ाता है, और समाज के लिए अत्यन्त सुन्दर उपदेशक है। दुःखार्त, शोकार्त, समर्थ तथा तपस्वी – इन सबको समय २ पर, शान्ति-प्रदान करता है। संसार के सब प्रकार के मनुष्यों का, इसमें, भावानुकीर्तन होता है। उनकी भिन्न २ दशायें, इसमें दिखाई जाती हैं। यह धर्म, क्रीडा और सुखादि को करने-वाला है" सहृदय पाठक, इससे भली भाँति पता लगा सकते हैं कि, संस्कृत नाटक निर्माण का, क्या वास्तविक उद्देश्य था। हमें पूर्ण विश्वास है कि, नाट्य-शास्त्र में बताये गये हाथ-पैरों के अनेक प्रकार, अद्भुत भाव-भङ्गियाँ, नाट्य-शाला आदि की व्यवस्था तथा मन-मोहन सीन् बनाने की पटुता, निःसंदेह अपूर्व थी, विचित्र थी और थी– आधुनिकों के सिर को—नीचा दिखाने-वाली।

नाटक का स्वरूप

साहित्य-दर्पण में लिखा है कि, नाटक वह वस्तु है—जिसका कि, इति-वृत्त प्रसिद्ध हो अर्थात् जिसकी कथा को मनुष्य, अधिक से अधिक संख्या में जानते हों; जिसमें अनेक रसों का प्रदर्शन हो; जो सुख और दुःख की उत्पत्ति में कारण हो; शृङ्गार अथवा वीर—इनमें से कोई एक रस, जिसमें, प्रधान हो और अन्य रस गौण हों; तथा अन्त में, जिसमें, एक आदर्श-नायक और नायिका की कल्पना की जाय!

वेणी-संहार

इस नाटक में, पाण्डवों के अज्ञात-वास के अनन्तर, युधिष्ठिर के राज-तिलक होने तक की कथा का वर्णन किया गया है।

पहले अंक में युधिष्ठिर ने, श्री कृष्ण को, दुर्योधन के पास संधि के लिये भेजा है। दुर्योधन ने संधि नहीं मानी, इस प्रकार महा-भारत के प्रलयंकर युद्ध का श्री गणेश होता है। सहदेव-सहित भीमसेन, द्रौपदी के अपमान को सुनता है, जिससे कि, उसका क्रोध भड़क उठता है।

दूसरे अंक में—कन्चुकी के द्वारा भीष्म और अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार मिलता है। भानुमती, स्वप्न में, नकुल के द्वारा सौ साँपों का वध देखती है, और इससे आशङ्कित होकर व्रत धारण कर लेती है। दुर्योधन के मन में, इसकी कुछ परवाह न करके, भानुमती के साथ विहार करने की प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न होती है। प्रचंड आँधी से घबराकर, भानुमती, अपना, व्रत-भङ्ग कर देती है। जयद्रथ की माता और पत्नी के द्वारा, दुर्योधन को, जयद्रथ-विषयक अर्जुन की प्रतिज्ञा का पता लगता है। दुर्योधन, इसकी भी परवाह न कर, युद्ध के लिये तैयार हो जाता है।

तीसरे अंक में—राक्षस और राक्षसी के द्वारा अनेक वीरों की मृत्यु का संवाद मिलता है। द्रोण की सेनाओं के भागने से चकित हुआ अश्वत्थामा रंग-मंच पर आता है। द्रोण का सारथी, उसे द्रोण की मृत्यु का समाचार सुनाता है। अश्वत्थामा विलाप करता है। कृपाचार्य अश्वत्थामा को, सेनापति बनाने की इच्छा से, दुर्योधन के पास ले जाते हैं। कर्ण और दुर्योधन, द्रोण के विषय में, ऊट-पटाँग बात चीत करते हैं।

अश्वत्थामा और कर्ण की झपट, भीम का दुःशासन को ललकारना, और उसकी रक्षा के लिये, कर्ण तथा दुर्योधन दोनों का युद्ध-भूमि में जाना-यह सब इस अंक में वर्णित हैं।

चौथे अंक में—मूर्च्छित दुर्योधन को, उसका सारथी, रण-भूमि से भगा ले जाता है। सचेत होते ही उसे दुःशासन की मृत्यु का पता लगता है। सुन्दरक सारी युद्ध-घटना सुनता है, जिससे कि भीम और कर्ण की लड़ाई और अर्जुन के द्वारा वृषसेन की मृत्यु का समाचार मिलता है। क्रुद्ध कर्ण का अर्जुन से भयंकर युद्ध, दुर्योधन के पास उसका अन्तिम संदेश भेजना, अन्धे-युगल का दुर्योधन के पास आना—यह सब कुछ वर्णन किया गया है।

पाँचवें अंक में—दुर्योधन का माता-पिता से मिलना, उन दोनों का संधि के लिये ज़ोर देना, शल्य अथवा अश्वत्थामा को सेनापति चुनने के लिये कहना, दुर्योधन का इसे न मानना, वहीं पर भीम और अर्जुन दोनों का आना, दुर्योधन के साथ उनकी बातचीत, युधिष्ठिर का आदेश सुनने के बाद उनका चला जाना, दुर्योधन का. क्रुद्ध अश्वत्थामा को, लड़ने से मना करना और धृतराष्ट्र का अश्वत्थामा के पास संदेश भेजना—वर्णित है।

छठे अंक में—पांचालक, दुर्योधन-संबन्धी वृत्तान्त को सुनाता है कि वह किस प्रकार तालाब में छिप गया था और एक वन्य-पुरुष की मदद से 'उन्होंने, कैसे उसको ढूंढा! मुनि-वेष में, दुर्योधन का मित्र राक्षस आता है। वह युधिष्ठिर और द्रौपदी को "दुर्योधन ने भीम को मार दिया"—यह कह कर भ्रम में डाल देता है, जिससे कि दोनों

चिता में कूदने का निश्चय कर लेते हैं। खून में सने भीम का यकायक पहुँचना, उनका उसे दुर्योधन समझना, अन्त में "यह भीम ही है" इस बात का निश्चय होना, भीम का खून के हाथों से द्रौपदी की चोटी बाँधना और उसके बाद श्रीकृष्ण और अर्जुन का प्रवेश और उपसंहार---यह इस अंक में वर्णित है।

रसों में—यहाँ, वीर रस प्रधान है और अन्य रस गौण हैं। दूसरे अंक में श्रृङ्गार का वर्णन है। तीसरे अंक में करुण, राक्षस-राक्षसी के प्रकरण में वीभत्स, और अश्वत्थामा के कुपित होने से रौद्र रस है। चौथे अंक में दुर्योधन के सारथी के मन में भीम को देख भय उत्पन्न होने से भयानक रस है। और छठे अंक में चार्वाक के द्वारा भीम की मृत्यु को निश्चित समझने-वाले युधिष्ठिर के मन में अकस्मात् उसे देख आश्चर्य होने से अद्भुत रस है।

दूसरे अंक में श्रृङ्गार-वर्णन का प्रयोजन

आलंकारियों का कहना है कि इस अंक में श्रृङ्गार-रस का वर्णन बे-मौके ही किया गया है। वे, दुर्योधन-सरीखे पुरुष का, युद्ध-व्यापार को छोड़ विहार में फँसना, अस्वाभाविक समझते हैं। फिर कवि ने ऐसा किया क्यों?--इसका उत्तर यही है कि दुर्योधन अपनी शक्तिमें पूरा २ भरोसा रखता था। यही कारण है कि उसने—वीर पांडवों को, युद्ध के लिये सुसज्जित जानकर भी, उनकी उपेक्षा की और उसी समय उसे विहार की सूझी–जिससे कि उसका सर्व-विनाश होगया–यही बात कवि ने वार्निंग के तौर पर, इस अंक में दिखाई है।

यह बड़े ही दुःख की बात है कि हमारे कवियों ने, अपने देश-काल के विषय में कुछ भी नहीं लिखा। कवि-कुल-गुरु कालिदास भी, इस विषय में बिलकुल चुप हैं। यही हाल हमारे विचारणीय कवि भट्टनारायण का है। वे ही कब अपने देश-काल के विषय में कुछ लिखने वाले थे! आख़िर अपने पूर्वजों के सच्चे अनुगामी ही तो ठहरे! अब बतलाइये, उनके देश-काल का निश्चय किया जाय तो कैसे किया जाय?—इसी के ऊपर हमें दो—शब्दों में विचार करना है। वेणी-संहार के पहले अंक में इन्होंने "मृगराजलक्ष्मणः" यह अपने लिये विशेषण दिया है। इसका मतलब यह हुआ कि—"सिंह जिसका उपनाम है"। किन्तु दाक्षिणात्यों में सिंह-उपनाम-वाले भट्ट मिलते ही नहीं—इसलिये यह बात तो सिद्ध ही है कि, ये, दाक्षिणात्य तो कम से कम थे नहीं। कोई कहते हैं कि भट्टनारायण पाञ्चरात्र-मतानुयायी थे। इसमें भी कोई प्रमाण नहीं; किन्तु, वेणीसंहार में—"विनष्ट-भेद समाधि के, स्नेही आत्म-विहारि" तथा "सब भेद भगवान्! भूल ईश्वर-भक्ति में संलीन हों" इत्यादि पदों से यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि भट्टनारायण पक्के अद्वैत-वादी थे।

वेणी-संहार का प्रणेता भट्ट नारायण

अब रही यह बात कि, ये उत्पन्न कब हुए? काव्यालंकार-सूत्रों के निर्माता वामनाचार्य ने, काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति में, वेणी-संहार के अनेक पदों का उद्धरण किया है। जैसे कि सहोक्ति के उदाहरण में "रिपु अस्त रवि-सम हो गया, निज-सैन्य को संहृत करें" यह पद उद्धृत किया

भट्ट नारायण की उत्पत्ति

है। इसी प्रकार और भी अनेक पद उद्धृत किये हैं। इससे यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि हमारे विचारणीय कवि भट्ट नारायण का जन्म, वामन से पूर्व का अवश्य है। क्योंकि, काव्यालंकार-सूत्रों का निर्माता वामन क्राइस्ट की सातवीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ था—इसलिये भट्ट नारायण का भी काल, वामन से प्राचीन होने के कारण छठी शताब्दी या उससे भी कुछ पूर्व का ठहरता है।

अन्त में सहृदय पाठकों से हमारा यही निवेदन है कि :—

शीश कराञ्जलि बाँध, करता हूँ मैं प्रार्थना।
तोड़ हृदय का बाँध, रसिक! इसे अपनाइये॥

इस कठिन नाटक का अनुवाद करने में हम कहाँ तक सफल हुए हैं—इसका निर्णय भी, सहृदय पाठक ही करेंगे।

10 Lawrence Sqaure
New Delhi
24/8/32.

विनीत,
श्री बी० डी० शास्त्री
(न्यायतीर्थ)

॥ ओ३म् ॥

वेणी-संहार

पहला अंक

(मँगलाचरण)

(१)

प्रतिषिद्ध[१] भी इन मधुकरों से पीत-रस[२] पुष्पांजली,
जनु चन्द्र-किरणों से भरी अन्दर खिली जिसकी कली।
हरि के चरण-युग पर पतित यह सिद्धि को देवे सदा,
जो इस सभासद्-वृन्द की आँखें लुभावे सर्वदा ।

(२)

यमुना-पुलिन में केलि-कुपिता प्रेम तजकर रास में,
राधा चली रोती हुई पीछे चले हरि साथ में।

१—मना किये गए भी। २—जिसका कि रस पीलिया गया हो।

पद-चिन्ह पर रक्खे चरण रोमांच इससे थे खड़े,
स-प्रेम प्यारी-इष्ट हरि की सतत३ अनुनय दुख हरे।

(३)

यमपुर-वृहन में प्रेम से जिसको निहारा देवि ने,
असुराङ्गनाओं ने सभय, सकरुण सरल मुनि-वृन्द ने।
हँस विष्णु ने, ले अस्त्र गर्वित शान्ति दे बधु-वार को,
असुरालि ने, सानन्द देवों ने—हरे हर ताप को।

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—बस करियेगा। बहुत हो चुका।

अमृत महाभारत रचा, जिसने श्रवण-विराम४।
अराग५ निर्मल६ व्यास को, हो मम पुण्य प्रणाम ॥ ४ ॥

(चारों ओर देखकर) माननीय सज्जनों से हमारा कुछ निवेदन है।

पुष्पांजलि जनु दूसरी, करता काव्य-प्रसार।
मधु-लव अलि-कुल-तुल्य तुम, ले लो गुण-कण-वार१ ॥५॥

हम इस कवि-सिंह भट्टनारायण के बनाये वेणी-संहार नाम के नाटक को खेलने वाले हैं। इसलिये हम चाहते हैं कि आप लोग ध्यान दें!—चाहे 'क्योंकि कवि ने इसमें बड़ा परिश्रम किया

३–निरन्तर। ४–कानों को सुख देने–वाला ५–निरीह। ६–दोष-रहित।
१–समूह।

है—इसलिये। चाहे महाभारत की पुण्य-कथा में गौरव होने से। और चाहे नया नाटक देखने की उत्कण्ठा से।

(नेपथ्य में)

भाव ! जल्दी करो, जल्दी करो। ये लोग कहते हैं कि आर्य विदुर की आज्ञा है—"सब बाजों को यथा-स्थान रख दिया जाय। ऐसा सुना गया है कि महाराज श्री कृष्ण, भरत-कुल की हित-कामना से, स्वयं दूत बनकर महाराज दुर्योधन के शिबिर को जायँगे। और उनके साथ पाराशर्य, नारद, तुम्बुरु तथा जामदग्न्य आदि मुनि भी जायँगे। उनका यह आने का समय है।"

सूत्रधार—(सुनकर आनन्द-पूर्वक) अरे ! कैसे आश्चर्य की बात है—कि, कौरवों तथा पाण्डवों की प्रचण्ड युद्धाग्नि को शान्त करने के लिये, सन्धि की इच्छा से, संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के कारण, साक्षात् कंस-वैरी भगवान् विष्णु ने, इस भरत-कुल तथा सम्पूर्ण राज-मण्डल को अपने दर्शनों से अनुगृहीत किया है। पारिपार्श्विक ! तुम नटों के साथ मिलकर गाना-बजाना क्यों नहीं शुरू करते ?

(आकर)

पारिपार्श्विक—अच्छी बात है, शुरू करता हूँ। तो किस ऋतु का गाना गाया जाय !

सूत्रधार—जिस में चाँदनी, नक्षत्र-मण्डल, सूर्यादि ग्रह, क्रौञ्च,

हंस, सप्तच्छद, कुमुद, पुण्डरीक[१] तथा काश-कुसुमों के पराग से सारी दिशायें सफेद ही सफेद नजर आती हैं—तथा जिस में तालाबों का जल बड़ा स्वादु हो जाता है—उसी शरद् ऋतु के विषय में कोई गाना गाओ। देखो इस शरद् ऋतु में—

सत-पत्त-वाले[२], मद-युत[३] काम,
सुमधुर बोलने-वाले बोल!
[४]धार्तराष्ट्र गिरते हैं भू पर,
[५]अलंकृत-आशा-वाले लोल[६] ॥ ६॥

पारि०—(घबरा कर) महानुभाव! ऐसे अमङ्गल—वचन मत बोलो।

सूत्र०—(आश्चर्य से मुस्कराकर) मारिष! शरद्-काल के वर्णन की इच्छा से मैं हंसों को धार्तराष्ट्र कहता हूँ। 'अमङ्गल-वचन मत बोलो—ऐसा कहने से तुम्हारा क्या मतलब?

पारि०—नहीं, यह बात नहीं है कि मैं तुम्हारे मतलब को नहीं समझा। किन्तु, सच बात तो यह है कि तुम्हारे अमङ्गल-सूचक इस वचन से मेरा दिल काँप सा गया।

१—श्वेत कमल। २—सत=अच्छे, पत्त—वाले=भीष्मादि जिनके सहायक हैं। हंसों की ओर अच्छे पंखों वाले। ३—मद=हर्ष और अहंकार। ४—धृतराष्ट्र के पुत्र, और धार्तराष्ट्र नाम के हंस। ५आशाओं=दिशाओं को जिन्होंने अलंकृत कर दिया है अर्थात् जगमगा दिया है। दूसरी ओर जिनकी आशाएँ=उम्मीदें बहुत बढ़ी हुई हैं। ६—चंचल।

सूत्र०—मारिष ! कंस-वैरी भगवान् श्रीकृष्ण ने, संधि की इच्छा से, दूत का स्थान स्वयं ग्रहण किया है, इसलिये अमङ्गल की कोई सम्भावना नहीं है। देखो,

माधव-सहित सब पाण्डु के सुत मार कर रिपु-जाल को,
सुख से रहें कर नष्ट दुखमय वैर-ज्वाला-जाल को।
भृत्यों-सहित सब१ स्वस्थ हों कुरुराज के सुत, कुछ धरा—
है दी जिन्होंने २रक्त को, ३विग्रह गया जिनका हरा ॥७॥

(नेपथ्य में

आः दुष्ट ! अमङ्गल-पाठक ! पाजी ! नट !

अनल४ सद्न-लाक्षा में दिया, अन्न में भी—
गरल, कपट के भी द्यूत से प्राण-प्यासे—
धन५रु, ६वसन, ७वेणी खींच कर द्रौपदी की,
कुरु-सुत मत-वाले, हों सुखी ?—भीम—जीते ॥ ८ ॥

(सूत्रधार और पारिपार्श्विक दोनों सुनते हैं)

पारि०—महानुभाव ! यह कौन बोल रहा है ?

सूत्र०—(पीछे देखकर) अरे ! यह तो क्रुद्ध भीमसेन, सहदेव के साथ, इधर ही आ रहे हैं। मालूम होता है कौरवों के साथ संधि के लिये वासुदेव का जाना इन्हें सहन नहीं

---

१ सुखी, तथा स्वः=स्वर्ग में, स्थ=रहने वाले अर्थात् मृत। २ खून, तथा रक्त=अनुरक्त=प्रेमी (सन्धि का सहारा लेने—वाले पाण्डव)। लड़ाई और शरीर। ४ लाख-गृह। ५ विष। ६ चीर। ७ चोटी = बाल।

हुआ। इनके विशाल मस्तक को तो देखो,—त्योरियाँ कैसी बदली हुई हैं! आँखें फाड़कर ऐसे देख रहे हैं मानों हम को खाजायेंगे। चलो चलें। हम लोगों का इनके आगे ठहरना ठीक नहीं।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रस्तावना

(सहदेव-सहित क्रुद्ध भीम का प्रवेश)

भीमसेन——आः दुष्ट! अमङ्गल-पाठक! पाजी! नट! ('अनल सदन—लाक्षा' – (१।८) इत्यादि फिर पढ़ता है)

सहदेव——(विनय-पूर्वक) आर्य! सहन करिये, सहन करिये। भरतपुत्र का कहना हमारे अनुकूल ही है। देखिये, ('माधव-सहित सब पाण्डु के सुत,—(१।७) यह पढ़कर अन्यथा अभिनय करना)।

भीमसेन——(उपालम्भ से) आप लोग कभी भी कौरवों के अमङ्गल की बात नहीं सोच सकते। आप लोगों के वे भाई सन्धि ही के योग्य हैं।

सहदेव——(क्रोध से) आर्य!

पग-पग पर हैं जो हुए, कौरव वैरी-रूप ।
कौन सहे तेरा अनुज, रोके यदि नहि भूप ॥९॥

भीमसेन——यही बात है। इसीलिये आज तक मैं आप लोगों से भिन्न रहा हूँ। देखो—

कुरुओं से शिशु-काल से, वैर बढ़ा जो आज।
कारण तुम दोनों नहीं, अर्जुन वा नृपराज॥
जरासंध-उर-तुल्य यह, फिर भी संधि विरूढ़[1]।
क्रुद्ध वृकोदर तोड़ता, जोड़ो तुम अति गूढ़॥१०॥

सहदेव—(विनय से) आर्य! सम्भव है आपके इस प्रकार क्रुद्ध हो जाने से भाईजी को बड़ा कष्ट होगा!

भीमसेन—क्या कहा?—भाईजी के मन को कष्ट होगा? क्या वे खेद करना भी जानते हैं? देखो—

नृप की सभा में द्रोपदी को नग्न[2] लख वन-प्रान्त में,
वल्कल पहिन बहु दिन बिताये व्याध-गण के साथ में।
विराट-पुर में रहे तथा छिप धार अनुचित वेष भी,
गुरु खिन्न मुझमें,क्यों नहीं वह कौरवोंमें आज भी?॥११॥

इसलिये सहदेव! तुम लौट जाओ। और चिरकालसे बढ़े हुए क्रोध से अत्यन्त दुखी मेरी ओर से महाराज को कह देना।

सहदेव—आर्य! वह क्या?

भीमसेन—आज्ञा तुम्हारी लाँघकर मैं हूँ फँसा [3]अघ-पङ्क में,
निन्दित हुआ मैं धैर्य-शाली बन्धु-जन के बीच में।
कुरु-खून को प्यासी गदा से कौरवों को मारता,
अनुचर नहीं मैं एक दिन को गुरु न तुमको मानता॥१२॥

१—उत्पन्न। २—नंगी। ३—अघ=पाप, पंक=कीचड़=पाप-रूपी कीचड़।

(यह कह उद्दण्डता-पूर्वक इधर उधर घूमना)

सहदेव—(भीम के पीछे चलता हुआ मन-ही-मन) अरे यह क्या ? आर्य तो पांचाली की चतुःशाला की ओर जारहे हैं। अच्छा ! मैं तबतक यहीं ठहरता हूँ।

भीमसेन—(पीछे लौटकर और देखकर) सहदेव ! जाओ, लौट जाओ। तुम भाईजी का अनुसरण करो। मैं भी शस्त्रालय में जा शस्त्र ग्रहण करता हूँ।

सहदेव—आर्य ! यह शस्त्रालय नहीं, पांचाली की चतुःशाला है।

भीमसेन—क्या कहा ?—यह शस्त्रालय नहीं ! (सोचकर हर्ष से) पांचाली से भी मुझे बातचीत करनी है। (प्रेम से सहदेव का हाथ पकड़कर) वत्स ! आओ। कुरुओं के साथ संधि की कामना से जो आर्य (युधिष्ठिर) हमें तंग करते हैं —उस पर आप भी विचार करें।

(दोनों का प्रवेश)

सहदेव—(शीघ्रता से) आर्य ! यह आसन बिछा हुआ है। आप यहीं बैठियेगा और कृष्णा के आने की प्रतीक्षा करियेगा।

भीमसेन—वत्स ! "कृष्णा का आना"-यह कहने से मुझे "कृष्ण का आना" याद हो आया। अच्छा ! यह तो बताओ कि भगवान् कृष्ण किस शर्त पर संधि करने के लिये दुर्योधन के पास भेजे गये हैं ?

सहदेव—आर्य ! पाँच गाँवों की शर्त पर।

भीमसेन—(कान ढककर) अहह ! महाराज युधिष्ठिर के तेज का इतना ह्रास ! सचमुच यह जान मेरा दिल काँप-सा गया है ? (घूमकर ठहरकर) इसलिये वत्स ! तुमने जो कुछ भी कहा है—वह न कहने के बराबर है और मेरा सुनना न सुनने के।

उग्र तथा बल-शक्ति, नृप का क्षत्रिय-तेज जो।
क्रीड़ा से—१अक्षालि, वह भी हारा शक नहीं ॥ १२ ॥

(नेपथ्य में)

धीरज धरिये, धीरज धरिये, रानी जी ?

सहदेव—(नेपथ्य की ओर देखकर मन-ही-मन) अये ! क्या यह पांचाली है ?—जिसकी आँखों से अश्रु-धारा बह रही है !—तथा जो आर्य के समीप चली आ रही है ? यह तो बड़ा भारी दुःख आ पड़ा !

जो यह विद्युन्माल२, क्रुद्ध आर्य में है भरी।
सो ३सम-वर्षा-काल, कृष्णा यह भड़कायगी ॥१३॥

(वर्णित-रूप में द्रौपदी तथा दासी का प्रवेश)

(द्रौपदी का आँसू गिराते हुए साँस लेना)

---

१ अक्षालि-क्रीड़ा से=पासों के खेल अर्थात् जुए से। २ बिजली। पावस के दिनों की भाँति।

दासी—धीरज धरिये, धीरज धरिये, रानी जी ? कुमार भीमसेन का कौरवों से हमेशा का वैर है। वे ही तुम्हारे इस दुःख को दूर करेंगे।

द्रौपदी—बुद्धिमती ! यह हो सकता है, यदि महाराज (युधिष्ठिर) इसके विरुद्ध न हों !

दासी—(देखकर) ये कुमार जी यहाँ पर विराजमान हैं। रानी जी इनके समीप जा सकती हैं।

द्रौपदी—हञ्जे ! चलो चलें।

(दोनों का चलना)

द्रौपदी—बुद्धिमती ! नाथ को मेरे आने की सूचना देदो।

दासी—रानी जी की आज्ञा सिर-माथे। (चलना) (भीमसेन का नहीं सुनते हुए 'उग्र तथा बल-शालि' (१। १२) इत्यादि फिर बोलना)

दासी—(घूमकर) रानी जी ? कहो तो एक बड़ी अच्छी बात सुनाऊँ ? कुमार जो क्रुद्ध मालूम पड़ते हैं।

द्रौपदी—हञ्जे ! यदि यह ठीक है !—तो मेरा यह अपमान भी मुझे धीरज बंधाता है। जरा एकान्त में बैठकर सुनूँ तो—नाथ क्या फैसला करते हैं।

(दोनों का वैसा करना)

भीमसेन—(क्रोध से सहदेव की ओर को) क्या पाँच गाँवों से सन्धि ?

मारूँ नहीं सौ कौरवों को युद्ध में मैं क्रोध से ?
पीऊँ न दुःशासन-उरस्थल-रक्त भी अति रोष से ?
जङ्घा सुयोधन की गदा से क्या न तोड़ूँ कोप से ?
राजा तुम्हारा संधि को करले समुद[1] पण-लोभ से ॥१५

द्रौपदी— (हर्ष-पूर्वक एक ओर को) नाथ ! ऐसा सुन्दर वचन, तुमने पहले कभी नहीं कहा। इसलिये इसे एक बार फिर से कहियेगा। (भीमसेन का, बिना सुने ही 'मारूँ नहीं सौ कौरवों को।— (१।१५) इत्यादि फिर पढ़ना)

सहदेव—आर्य ! आप महाराज के इस सन्देश को अनुचित -सा क्यों समझते हैं ?

भीमसेन—इसमें औचित्य ही क्या है ?

सहदेव—आर्य ! महाराज ने ऐसा सन्देश भेजा है।

भीमसेन—किसको ?

सहदेव—सुयोधन को।

भीमसेन—कैसा ?

सहदेव—इन्द्र-प्रस्थ, वृक-प्रस्थ, जयन्तवारण-नाम ;
दे दो ये चारों हमें, कोई पञ्चम ग्राम ॥१६॥

भीमसेन—उससे कुछ नतीजा ?

सहदेव—मुझे तो इस प्रत्येक ग्राम का नाम लेने से और

१—हर्ष से।

पाँचवे का नाम न लेने से यही जान पड़ता है कि वे इससे विष-भोजन, लाख-गृह-दहन तथा द्यूत-सभा आदि मुख्य अपकारों को प्रकट करना चाहते हैं।

भीमसेन—वत्स ! ऐसा करने से क्या होगा ?

सहदेव—आर्य ! ऐसा करने से यह प्रकट हो जायगा कि हम लोगों को, अपने कुल-नाश का कितना भय है, तथा साथ ही साथ—दुर्योधन सर्वथा संधि के अयोग्य है—यह बात भी साबित हो जायगी।

भीमसेन—मूर्ख ! यह सब कुछ व्यर्थ है। दुर्योधन सर्वथा सन्धि के अयोग्य है, यह बात तो तभी साबित हो गई थी, जब हमने, यहाँ से बन जाते समय, कुरु-कुल के विध्वंस की शपथ ली थी। संसार भी इस बात को भलीभाँति जानता है कि कौरव-वंश का नामो-निशान मिट जायगा।

सहदेव—(लज्जा का अभिनय करता है)

भीमसेन—क्या आप लोगों को उससे लज्जा आती है ? अरे मूर्ख ! और सुन—

तुम्हें लजाता क्रोध से, जग में शत्रु-विनाश।
नहिं लजाता कृष्ट१ भी, दयिता२ का ३कच-पाश !!१७॥

द्रौपदी—नाथ ! इन्हें तो लाज आती ही नहीं—कहीं आप भी (मुझ अबला के इस भयङ्कर अपमान को) मत भूल जाना।

१—खींचा गया। २—स्त्री। ३—बाल।

भीमसेन—(स्मरण-पूर्वक) वत्स ! पांचाली देर क्यों कर रही है ?

सहदेव—आर्य ! उन्हें यहाँ आये काफ़ी वक़्त बीत चुका। किन्तु क्रोध के कारण आपने आई हुई भी उन्हें नहीं देखा।

भीमसेन—(देखकर सादर) देवी ! क्रोध के आवेग में हमने आई हुई भी तुम्हें नहीं देखा।—क्षमा करना।

द्रौपदी—नाथ ! आप लोगों की उदासीनता ही मुझे भड़काती है न कि क्रोध भी।

भीमसेन—यदि यह ठीक है ?—तो समझो तुम्हारे अपमान का बदला लिया जा चुका। (हाथ पकड़कर समीप में बैठाना तथा मुँह की ओर देखना) तुम्हारी उद्विग्नता का क्या कारण है, देवी ?

द्रौपदी—नाथ ! आप लोगों के रहते उद्विग्नता का क्या कारण हो सकता है ?

भीमसेन—क्यों नहीं बताती हो ?—(बालों को देखकर) अथवा, कहने से क्या ?—

पाण्डव हम जीते रहें, तथा न दूर-निवास ।
पांचाली की दुर्दशा, प्रकटत केश-विनाश[1] ॥१८॥

द्रौपदी—बुद्धिमती ! नाथ से कहदो कि उनके सिवाय मुझ अबला के अपमान से कौन दुखित होता है !

---

१ — बिखरे बाल।

दासी—रानी जी की आज्ञा सिर-माथे। (भीम के पास जाकर हाथ जोड़कर) कुमार जी ! सुनियेगा। रानी जी के दुःख का कारण इससे भी भयंकर है।

भीमसेन—क्या इससे भी भयंकर ? बुद्धिमती ! कह, कहती क्यों नहीं ?

कौन कुरु-कुल-अग्नि में, चाहत हुआ पतङ्ग।
छू यत-वेणी धूम्र की, शिख-सम कृष्णा-अङ्ग ॥१९॥

दासी—सुनियेगा कुमार जी ! आज रानी जी, माता जी तथा सुभद्रा आदि सौतों के साथ, पूजनीया गान्धारी को चरण-वन्दना करने गई थीं।

भीमसेन—यह ठीक है। गुरुओं की चरण-वन्दना करनी ही चाहिये। तब, फिर !

दासी—वहाँ से लौटते समय उन पर भानुमती की नज़र पड़ गई।

भीमसेन—(क्रोध से) आः ! दुश्मन की पत्नी ने देखा ? ओह ! तब तो देवी ने ठीक स्थान पर क्रोध किया ! तब, फिर !

दासी—तब उसने रानी जी की ओर देख, अपनी सहेलियों पर नज़र डाली—और बड़े गर्व से मुस्कराकर बोली।

भीमसेन—सिर्फ देखकर ही सब्र नहीं आया, बोली भी ? ओह ! क्या करें !! तब, फिर !

दासी—"अरी ? द्रौपदी ? हमने सुना है कि पाँच गाँव माँगे गये

हैं। तो क्या कारण है तुम्हारे बाल अब भी नहीं बँधे ?

भीमसेन—सहदेव ! सुना ?

सहदेव—आर्य ! उसका ऐसा कहना उचित ही है। आख़िर दुर्योधन की स्त्री ही तो ठहरी ! देखिये,

स्त्री के चित को पति-सदृश, करता पति-सहचार ।
मीठी भी विष-तरु-चढ़ी, लतिका देती मार ॥ २० ॥

भीमसेन—बुद्धिमती ? तब देवी ने क्या कहा ?

दासी—कुमार जी ! यदि रानी जी के साथ कोई न होता—तो उन्हें कहने की ज़रूरत भी पड़ती !

भीमसेन—तो फिर तुमने क्या कहा ?

दासी—कुमार जी ! मैंने यह कहा—"अरी भानुमती ! तुम्हारे बालों के बिना खुले हमारी रानी जी के बाल कैसे बँध सकते हैं ?"

भीमसेन—(सन्तोष-पूर्वक) शाबाश ! बुद्धिमती ! शाबाश !! तुमने ठीक वही बात कही जो कि हमारे परिजन को कहनी चाहिये थी। (यह कहकर अपने आभूषण बुद्धिमती को देता है। व्याकुलता से आसन से उठता हुआ) सुनो पाँचाली ! शीघ्र ही,

भुज-दण्ड से चंचल गदा को मैं घुमाकर वेग से,
जङ्घा सुयोधन की करूँगा चूर उसकी चोट से।

बहते हुए १अविरल रुधिर से गाढ़ रँग कर हाथ को,
मैं भीम बाँधूगा प्रिये ! तेरे खुले कच-पाश को ॥ २१ ॥

द्रौपदी—नाथ ! क्रुद्ध आपके लिये कुछ भी मुश्किल नहीं। मैं चाहती हूँ कि आपके इस विचार से आपके अन्य भाई भी सहमत हों !

सहदेव——हम सब सहमत हैं।

(नेपथ्य में कोलाहल मचना। सबका आश्चर्य-पूर्वक सुनना)

भीमसेन——

२अर्णव-मथन में जल-भरी-मन्दर-गुहा-रव-घोर जो,
अरु कोण बजने पर, प्रलय-घन-गड़गड़ाहट-चण्ड जो।
कुरु-कुल-निधन का जो प्रभञ्जन, दूत कृष्णा-क्रोध का,
किसने बजाया वाद्य यह प्रतिरव३ यथा मम नाद४ का ॥२२॥

(आकर घबराया हुआ)

कञ्चुकी—कुमार जी ! भगवान् वासुदेव पधारे हैं।

(सब का हाथ जोड़कर खड़े हो जाना)

भीमसेन—(जल्दी से) कहाँ हैं भगवान् ?

कञ्चुकी—पाण्डवों के पक्षपाती उन्हें, क्रुद्ध सुयोधन ने बाँधना चाहा।

(सब का आश्चर्य प्रकट करना)

भीमसेन—क्या बाँध लिया ?

---

१ निरन्तर। २ समुद्र। ३ प्रतिध्वनि। ४——सिंहनाद।

कञ्चुकी—नहीं, नहीं। बाँधना चाहा।

भीमसेन—भगवान् ने तब क्या किया ?

कञ्चुकी—तब उस महात्मा ने, अपना विराट-रूप दिखाया—जिसके उग्र तेज से सारे कौरव बेहोश हो गये। अब भगवान् आप से जल्दी ही मिलना चाहते हैं।

भीमसेन—(हँसकर) क्या दुष्ट सुयोधन भगवान् को बाँधना चाहता है ? (आकाश में देखकर) आः ! दुष्ट ! तूने कुरु-वंश पर कैसा धब्बा लगाया है ! नीच ! तैंने मर्यादा को सर्वथा तिलांजलि दे डाली ! बस, अब पाण्डवों के क्रोध को निमित्त-मात्र ही जान।

सहदेव—आर्य ! क्या यह दुरात्मा, भगवान् वासुदेव के भी स्वरूप को नहीं पहचानता ?

भीमसेन—वत्स ! इस मूढ़ का दिल गन्दा है, यह उन्हें कैसे पहचान सकता है ! सुनो,

१विनिष्ठ-भेद समाधि के, स्नेही आत्म-विहारि२।
३सत्त्व-निष्ठ सत-ज्ञान से, निपट ४अविद्या-हारि॥
जिसको लखते विचरते, तम प्रकाश से दूर।
मूढ़ पुरातन देव को, क्योंकर जाने क्रूर॥२३॥

१—निर्विकल्प=असंप्रज्ञात नाम की समाधि=ध्यान। २—परमात्मा में रमण करने वाले। ३—सत्व-गुण में जिनकी निष्ठा=स्थिति है। ४—अज्ञान को जिन्होंने दूर कर दिया है।

आर्य ! मैत्रेय ! महाराज इस समय क्या कर रहे हैं ?

कंचुकी—कुमार स्वयं ही जाकर महाराज के विचार को जानेंगे।

(प्रस्थान)

(नेपथ्य में कोलाहल के अनन्तर)

अरे रे ! द्रुपद, विराट, वृष्णी, अन्धक तथा सहदेव-प्रभृति अक्षौहिणी-पतियो ! तथा कौरव-पक्ष के प्रधान योद्धाओ ! सुनें, आप लोग !

शुभ सत्य-व्रत के भङ्ग-भय से यत्न से रोका जिसे,
कुल-शान्ति-इच्छुक शान्त ने चाहा भुलाना भी जिसे।
क्रोधाग्नि जो मम कुरु-विपिन में द्यूत-अरणी से बढ़ी,
वह द्रौपदी-कच-वस्त्र-कर्षण से महाद्युति से मढ़ी ॥२४॥

भीमसेन—(सुनकर हर्ष से) आर्य की क्रोधाग्नि भड़के ! बे-रोक-टोक भड़के !!

द्रौपदी—नाथ ! प्रलय-कालीन बादलों के समान, क्षण-क्षण में, इस समय यह कैसी रण-भेरी बज रही है ?

भीमसेन—देवी ! यह और कुछ नहीं, यज्ञ का प्रारम्भ है।

द्रौपदी—(आश्चर्य से) यह कैसा यज्ञ ?

भीमसेन—रण-यज्ञ ! देखो,

हम चार ऋत्विक्, हरि तथा भगवान् वह आचार्य है,
रण-यज्ञ में दीक्षित नृपति, पत्नी नियम में युक्त है।

पशु-तुल्य कौरव, फल १प्रिया-परिभव-महा-दुख-नाश है,
राजन्य-कुल-आह्वान को बजता मनोहर वाद्य है ॥२५॥

सहदेव—आर्य ! महाराज के आदेश से, अब हम रण में अपना पराक्रम दिखाने जा रहे हैं।

भीमसेन—वत्स ! यह हम महाराज का आदेश मानने के लिये तैयार हैं। (उठकर) देखो ! अब हम कौरवों का संहार करने जा रहे हैं।

द्रौपदी—(आँखों में आँसू भर) प्राणनाथ ! दैत्यों से लड़ते हुए भगवान् विष्णु के तुल्य, युद्ध में, आप सब भाइयों का कल्याण हो ! तथा माता कुन्ती जो कुछ चाहती हैं—वह सब पूर्ण हो !

दोनों—देवी ! तुम्हारे मङ्गल-वचन को हम स्वीकार करते हैं।

द्रौपदी—प्राणनाथ ! एक बात और कहना चाहती हूँ—और वह यह—कि आप लोग जब युद्ध से लौटें, तो मुझ अबला को धीरज अवश्य बँधायें।

भीमसेन—पांचाली ! आज भी झूठा धीरज देने से क्या ? देख,

अति परिभव जिसने सहा, लज्जा से नत-आस्य !
पिया ! लखेगी भीम का, कुरु-कुल-नाशी आस्य ॥२६॥

द्रौपदी—नाथ ! मुझ अबला के अपमान से, अत्यन्त क्रोध के आवेश में, कहीं अपने देह की सुध-बुध मत भूल जाना।

१—प्रिया=द्रौपदी के परिभव=अपमान-रूपी महादुख का नाश।

सुना जाता है—"शत्रु-दल में सदा सावधान होकर विचरना चाहिये" ।

भीमसेन—प्यारी ! सच्ची राजपूत-नन्दिनी !

एक दूसरे की टक्कर से मरे हाथी-रक्त,
चरबी, मांस, माथों का मचा जहँ पंक है ।
डूबे रथों के ऊपर को रखने से चरण,
विक्रमी पदातियों का जहँ पद-अंक है ।
दीप्त-रुधिर की पान-गोष्ठी में शोर—मचाती,
अशुभ गीदड़ी-गान से नाचै कबन्ध है ।
ऐसे युद्ध-रूपी सागर की अनन्त जल-राशि में,
विचरने में पाण्डव-कुल! [1]गत-बन्ध है ॥२७॥

(सब का प्रस्थान)

॥ पहला अङ्क समाप्त ॥

——:०:——

१—बिना रोक-टोक के ।

दूसरा अंक।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—महाराज दुर्योधन की आज्ञा है—"विनयंधर! तुम जल्दी जाओ। भानुमती को ढूँढो। माता जी की चरण-वंदना करके वह लौटी या नहीं? मुझे उससे मिलकर, कर्ण, जयद्रथ-आदि सेनापतियों को, रण-भूमि में जाकर, बधाई देनी है। क्योंकि उन्होंने आज अभिमन्यु को मार डाला है।" इसलिये मुझे जल्दी ही जाना है। क्या महाराज की आज्ञा भी टाली जा सकती है? मैं बूढ़ा हूँ। मेरा काम ही रनवास में विचरना है। अथवा बुढ़ापे को क्यों कोसूँ? रनवास में विचरने वाले सभी कंचुकियों का यही वेष तथा यही काम है। देखिये,

आँख कान दोनों यदपि, सकूं न सुन वा देख।
लाठी पकड़ी शक्त ने, जान कर्म की रेख॥
ग़लती हो नहिं काम में, रखा सदा है ध्यान।
किया नहीं मैंने तथा, कोई काम-गुमान॥
सेवा से यह जिन्दगी, हुई निपट फल-हीन।
बुढ़ापे ने कुछ भी अहो, विपति मुझे है दीन॥ १॥

(घूमकर तथा देखकर आकाश में) विहंगिका ! क्या श्वश्रू-जन की चरण-वंदना करके भानुमती लौटी या नहीं ? क्या कहती हो ?—"देवी भानुमती ने, अपने पति की रण में विजय-कामना के लिये, आज से गुरुओं तथा देवताओं की पूजा समाप्त कर,व्रत धारण किया है,तथा बालोद्यान में विराजमान है।" जाओ, भद्रे ! जाओ। तुम अपना काम देखो। मैं भी महाराज से कह दूँ कि रानी जी यहाँ (बालोद्यान में) विराजमान हैं। (घूम कर) धन्य ! रानी जी !! आप सच्ची पतिव्रता हैं। आप स्त्री होती हुई भी भली हैं—न कि महाराज। क्योंकि ये आज भी सबल अथवा निर्बल, वासुदेव-सहायक, निज-वैरी पाण्डवों के, युद्ध के लिये सुसज्जित हो जाने पर भी, भोग-विलास में फँसा हुआ है। (सोचकर) महाराज की यह एक और अनुचित बात है। देखिये,

जब से पकड़ा हाथ में, कुण्ठित नहीं कुठार।
जिसका—उसको भी अहो, है दो जिसने हार॥
पाण्डव-शर से भीष्म वे, मरे पड़े हैं आज।
उनके भी दुख से दुखी, नहीं हुए कुरुराज॥
चतुर धनुर्धर बहुत से, अरि-दल के दलबोर।
थका अकेला बाल जब, रिपु ने मारा तीर॥
पीछे से, धनु कट गिरा, होती प्रीति विशेष!
स्वामी को अभिमन्यु के, होने से [1]यश-शेष॥ २॥

---

[1] यश=कीर्ति ही जिसकी एक मात्र शेष रही है=बची है, अर्थात् जो मर गया है।

अब तो दैव ही सब प्रकार से हमारा कल्याण करेगा। ता शीघ्र ही महाराज से जाकर निवेदन करता हूँ कि रानी जी यहाँ—(बालोद्यान में) विराजमान हैं।

विष्कम्भक।

(आसन पर बैठी देवी भानुमती, सखी तथा दासी का प्रवेश)

सखी—सखी! भानुमती! क्यों तुम इस समय, सिर्फ़ स्वप्न-दर्शन से, अभिमानी महाराज दुर्योधन की रानी होकर भी, इतनी अधीर तथा सन्तप्त हो रही हो?

दासी—रानी जी! सुवदना ठीक कहती है। सोता हुआ मनुष्य क्या नहीं बकता!

भानुमती—हञ्जे? तुम्हारा कहना ठीक है। फिर भी यह स्वप्न, मुझे, न जाने क्यों इतना अशुभ प्रतीत होता है।

सखी—यदि ऐसी बात है—तो प्यारी सखी? कहो, जिस से कि हम दोनों भी, स्तुति-पाठ तथा देवों के संकीर्तन से, स्वप्न-फल को शुभ बना सकें!

दासी—रानी जी? बात दर असल यही है—अमंगल-कारी स्वप्न भी स्तुति-पाठ करने से मंगल-कारी सिद्ध होते हैं—यही सुनने में आया है।

भानुमती—यदि यह ठीक है—तो कहती हूँ। ध्यान से सुनो।

सखी—कहो, प्यारी सखी!

भानुमती—ज़रा ठहरो। मैं सब याद करलूँ! (सोचना)

(दुर्योधन तथा कंचुकी का प्रवेश)

दुर्योधन—किसी ने ठीक कहा है।—

छिप कर, थोड़ा, बहुत वा, वैरी का अपकार ।
किया स्वयं—परने तथा, देता प्रीति अपार ॥३॥

क्योंकि, आज द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि से मारे गये, अभिमन्यु का वृतान्त सुन, मेरे मन की कली खिल-सी गई है।

कंचुकी—महाराज ? द्रोणाचार्य की शस्त्र-शक्ति ही कुछ ऐसी है कि, उसके लिये यह काम कुछ भी कठिन नहीं। कर्ण अथवा जयद्रथ की इसमें क्या बड़ाई ?

राजा—विनयंधर ? क्या यह कहता है ?—एक बालक को ?—तिस पर जिसका धनुष काट डाला गया हो ?—यदि बहुतों ने मिलकर मार डाला ! तो इसमें कौरवों की क्या बड़ाई ? मूर्ख ! देख,

शिखण्डि को कर सामने, वृद्ध भीष्म को मार ।
पाण्डु-सुतों को यश मिला, होगा वही हमार ॥ ४ ॥

कंचुकी—(चकित होकर) महाराज ? मेरा यह मतलब कदापि नहीं। किन्तु—क्योंकि, आप लोगों के काम, हमेशा वीरता-पूर्ण होते हैं—इसीलिये मेरे मुँह से यह बात निकल गई।

राजा—तुम ठीक कहते हो। देखो,

अनुज, भृत्य, सुत, मित्र-गण, बन्धु-युक्त रण-बीच ।
पार्थ सुयोधन—प्राण को, बल से लेंगे खींच ॥ ५ ॥

कंचुकी—(कानों को ढक भय से) ऐसे अमङ्गल-वचन मत बोलियेगा महाराज ?

राजा—विनयंधर ? क्यों ?—मैंने क्या कह डाला ?

कंचुकी—

अनुज, भृत्य, सुत, मित्र-गण, बन्धु-युक्त रण-बीच।
कुरुपति पाण्डव-प्राण को, बल से लेंगे खींच ॥६॥

आपने बिलकुल इससे उलटा कहा है।

राजा—विनयंधर ? आज प्रातःकाल भानुमती, सदा की भाँति मुझ से बिना मिले ही, शयनागार से निकल कहीं चली गई है। इसलिये मेरा दिल, बड़ा बेचैन हो रहा है। मुझे वह स्थान तो बताओ !–जहाँ पर प्यारी भानुमती विराजमान है !

कंचुकी–इधर को आइयेगा, इधर को आइयेगा महाराज ?

(दोनों का चलना)

कंचुकी—(आगे की ओर देख चारों ओर गंध सूघकर) महाराज ? देखियेगा, देखियेगा !–यह आपके सामने ही बालोद्यान है,–जहाँ ओस-कणों-वाली शीतल समीर के झोके से टूटकर शेफालिका के फूल बिखरे पड़े हैं; ईषत् लोहित, सुन्दर स्त्रियों की गालों के समान गोरे २ लोध के फूलों ने, जहाँ पर, श्याम-लता की खूबसूरती पर पानी फेर दिया है; खिले हुए कुन्द-कुसुमों से जो सुगन्धित हो रहा है—और उषःकाल में जिसकी छबि देखते ही बनती है। देखियेगा।

[1]हिम-कण-कलित-मकरन्द-दन्तुर [2]अङ्क जिसका सो रहा,
रजनी-जगी-कुसुमावली-सम-काल अलि जो गिर रहा।
वह,—सूर्य-किरणों से खिले कलि-वृन्द से जो आ रहा,
उस गन्ध से सूचित हुई कमलावली पर जा रहा ॥७॥

राजा—विनयंधर ? जरा दूसरी ओर भी नजर डालो। जिससे कि इस प्रभात-काल की खूबसूरती कहीं अधिक बढ़ गई है।

जगते समय,खुलते-हुए दल-प्रान्त के मृदु-जाल से,—
घुस,-नृप-सदृश हैं जो जगे हो स्पृष्ट रवि-कर माल से।
घन-गन्ध से सूचित हुए अँगराग से जो जग-मगे,
तज पद्मिनी-मृदु-शयन को ये भृङ्ग श्री-युत हैं जगे ॥८॥

कंचुकी—महाराज ? सुवदना तथा तरलिका के साथ, ये रानी जी विराज रही हैं। आप इनके समीप जा सकते हैं।

राजा—(देखकर) आर्य ! विनयंधर ? जाओ,तुम हमारे युद्ध-रथ को तैयार करो। मैं भी देवी से मिलकर अभी आता हूँ।

कंचुकी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे।

सखी—प्यारी सखी ? क्या तुम याद कर चुकी ?

भानुमती—हाँ, सखी ? याद कर लिया। आज मेरे देखते ही देखते—जब कि मैं प्रमद-वन में बैठी हुई थी, एक दिव्य-आकृति-वाले नकुल ने सौ साँप मार डाले।

१—हिम=कण ओस-कणों से, कलित=युक्त,मकरन्द=फूलों के रस से, दन्तुर=विषम। २—मध्य।

दोनों—(मन-ही-मन) भगवान् कल्याण करें ! (प्रकट) तब, फिर !

भानुमती—दिल बड़ा बे-चैन है ! मैं फिर भूल गई। इसलिये आगे फिर याद करके कहूँगी।

राजा—अहो ! देवी भानुमती, सुवदना तथा तरलिका के साथ, कुछ मंत्रणा कर रही है। अच्छा ! इस लता की ओट में हो इनके रहस्यालाप को सुनता हूँ ! (वैसा करना)

सखी—सखी ? बस करो, अधिक दुखी मत होओ। अपनी कथा शुरू करो, प्यारी सखी !

राजा—न जाने इसके दुःख का क्या कारण हो ! अथवा यह आज मुझसे बिना मिले ही शयनागार से चली गई थी—इसलिये यह क्रुद्ध है अवश्य ! प्यारी भानुमती ! दुर्योधन तुम्हारे क्रोध का पात्र नहीं है।

क्या कण्ठ में ढीला किया भुज-पाश मैंने मोह से ?
करवट-बदलने में नहीं तुमको मनाया मोद से ?
पर-स्त्री-गमन से स्वप्न में क्या तुच्छ मुझको जानती ?
परिजन-उपालँभ-योग्य में क्या दोष प्यारी ! मानती ? ॥९॥

(सोच कर) अथवा,

१अनन्य-मन हमसे परम, करती प्यारी प्यार।
है निश्चय इससे कुपित, कुछ कसूर उर धार ॥१०॥

१—जिसका मन किसी दूसरे में नहीं लगा हुआ है।

भानुमती—तब उस अत्यन्त दिव्याकृति१ नकुल को देख मैं उत्कण्ठित भी हुई और मेरे दिलमें प्रेम भी उत्पन्न हुआ। इसलिये मैं उस आसन को छोड़ लता-मण्डप की ओर चल पड़ी।

राजा—(आश्चर्य से) क्या उस अत्यन्त-दिव्याकृति नकुल को देख उत्कण्ठित भी हुई और मनमें प्रेम भी उत्पन्न हुआ ? तो क्या यह माद्री के लड़के नकुल से प्रेम करती है ! और हमें धोका देती है !! (सोच कर) ('अनन्य-मन हम से परम,-(२।१०) यह पढ़ कर) मूढ ! दुर्योधन ! कुलटा से ठगा गया, अपने आप को बहुत मानने वाला तू, अब क्या कहेगा ? ('क्या कण्ठ में—(२।९) इत्यादि पढ़ कर चारों ओर देख कर) अहो ! अब जाना !—ठीक इसीलिये यह, सबेरा होते ही, एकान्त स्थान में चली आई और इस तरह अपनी सहेलियों से बातचीत करने में मग्न है। दुर्योधन सच-मुच, अज्ञान-वश कुलटा के मन को नहीं पहचान सका।—और इसी लिये अभी तक भ्रम में पड़ा रहा। आः ! पापिनी ! मेरी पत्नी होकर भी व्यभिचारिणी ?

क्या भीरुता वह !—जो किया साहस अधम-जन-अङ्क में,
क्या वह बड़ाई !—प्रेम है जो विनय के भी भङ्ग में।
क्या वह सरलता !—मंद-मति के सामने पथ-हीन है,
विख्यात-निर्मल-वंश में यह जन्म तव २कौलीन है ॥११॥

१—दिव्य-आकृति-वाला अर्थात् सुन्दर। २—दुष्कर्म अर्थात् कलङ्क-रूप।

सखी—तब, फिर !

भानुमती—उसके बाद वह भी मेरे पीछे ही पीछे लता-मण्डप-में घुस गया।

राजा—अहो ! यह तो कुलटाओं के समान पूरी ढीठ हो गई !

सखियों को अति प्रेम से, सुनाया सारा हाल।
निर्जन में विश्वास से, मम रति-वर्णन-हार॥
अपने दुर्व्यवहार को, उनसे ही तू आज।
सुना रही कुलटे अहो ! तनिक न आती लाज ॥१२

दोनों—तब, फिर !

भानुमती—तब उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया और मेरा स्तनांचल खींच लिया।

राजा—(क्रोध से) बस ! इससे आगे नहीं सुना जाता। अच्छा ! अभी दूसरों की स्त्रियों को दूषित करने वाले उस माद्री के बच्चे को प्राणों का दण्ड देता हूँ (कुछ चलकर तथा सोच कर) अथवा पहले इस पापिनी को ही मारता हूँ। (लौट आना)

दोनों—तब, फिर !

भानुमती—इसके अनन्तर आर्य-पुत्र का मङ्गल-वाद्य बजा, और उसके साथ ही साथ गणिकाओं की गीत-ध्वनि मेरे कानों में पड़ी—जिससे कि मेरी आँखें खुल गईं।

राजा—(तर्क-वितर्क करता हुआ) क्या ? यह कहती है—कि

जगा दी गई ? हो सकता है—यह अपना स्वप्न ही सुना रही हो ? अथवा सहेली की बात से सारी बात साफ़ हो जायगी।

(दोनों का दुखित होकर एक दूसरी की ओर देखना)

सुवदना—जो कुछ भी यहाँ (इस स्वप्न में) बड़े-डर की बात हो—वह, भगवती मन्दाकिनी-आदि नदियों के पुण्य-सलिल से दूर करो। तथा ब्राह्मणों के आशीर्वाद से, अथवा विधि-पूर्वक होम की गई—अतएव जाज्वल्यमान भगवान् हुताशन के प्रताप से वह अनिष्ट नष्ट होवे!—यही हमारी कामना है।

राजा—बस ! अब सन्देह करना व्यर्थ है। यह तो इसने अपना स्वप्न-वृत्तान्त ही सुनाया है। किन्तु, मुझ मूर्ख ने और ही कुछ समझा।

आधा सुन भ्रम से यद्पि, क्रोध हुआ उद्दाम१।
नहि उससे अच्छा हुआ, तद्पि किया कुछ काम॥
परुष वचन जो क्रोध से, बड़े हर्ष की बात।
नहि मैंने कुछ भी कहा, आधी सुनकर बात॥
यह भी अच्छा ही हुआ, हुआ कथा का अन्त।
जिससे मेरे चित्त के, भ्रम का हुआ सदन्त॥
सौभाग्य से संसार से, लगा न झूठा दोष।
प्यारी को मैंने किया, शिदा मिटाने रोष॥१२॥

१—अधिक।

भानुमती—हला ! कह तो !—इसमें क्या शुभ-सूचक है, और क्या अशुभ-सूचक ?

सखी तथा दासी—(एक दूसरो की ओर देख, एक ओर को) सच तो यह है कि इसमें ज़रा-सी भी शुभ-सूचक बात नहीं। यदि झूठ-मूठ ही इसमें कोई शुभ-सूचक बात बताऊँ तो मैं प्यारी सखी की अपराधिनी ठहरूँगी। सचमुच सच्चा मित्र वही है—जो पूछने पर हित-कारी वचन कहता है—चाहे वह कठोर ही क्यों न हो ! (प्रकट) सखी ! सब अशुभ-सूचक है। इसलिये तुम्हें चाहिये कि देवताओं की अभिवन्दना करके तथा ब्राह्मणों को विधि-पूर्वक दान देकर, उसे दूर करो। क्योंकि पण्डित-जन, स्वप्न में, व्याघ्रादि का तथा नेवले का दर्शन, अच्छा नहीं बताते।

राजा—सुवदना ने ठीक कहा। नेवले के हाथ सौ साँपों का मारा जाना तथा स्तनांचल के अपहरण को, मैं, भविष्य में अनिष्ट-कारी ही समझता हूँ। क्योंकि,

बारी से हैं दृष्ट, भले बुरे जो स्वप्न हैं।
१सानुज मुझको स्पृष्ट, करती सौ संख्या पुनः ॥१४॥

(बाँईं आँख का फड़कना) आः ! मुझ दुर्योधन के भी दिल को अपशकुन मथ रहे हैं। (अहंकार से) भीरु-जनों के मन को मथने वाले इस तरह के स्वप्नों को, दुर्योधन क्या परवाह करता है ! अङ्गिरा ऋषि ने भी यही बात कही है,

---

१—छोटे भाइयों सहित ।

चरित ग्रहों का, स्वप्न वा, आकस्मिक उत्पात।
यकायक आते विबुध-जन, होते नहि भय-प्राप्त ॥१५॥

इसलिये वनिता-सुलभ इस आशङ्का को, भानुमती के दिल से दूर किये देता हूँ।

भानुमती—सखी! सुवदना! ज़रा भगवान् सूर्य-देव की ओर तो देखो,—उदयाचल की मेखला को इसके स्वर्ण-मय रथ ने कितनी दूर छोड़ दिया है! तथा संध्या-कालीन लालिमा के धुल जाने के कारण, यह, स्वच्छ-मण्डल हो, कितना भासमान हो रहा है!—जिससे इसकी ओर आँख उठाना एक भयङ्कर समस्या हो गई है।

सखी—सखी! कसौटी पर कसे कनक-पत्रों के तुल्य, लताओं के बीच में से होकर गिरते हुए किरण-समूह से, उपवन की स्थली को पीत-वस्त्र से ढकता हुआ—यह भगवान् अंशुमाली इतना तप रहा है कि इसकी ओर इस प्रकार देखना दूभर हो गया है—जैसे पूर्ण-प्रतिज्ञा वाले पुरुष की ओर उसके शत्रु को, आँख उठानी कठिन हो जाती है।

भानुमती—सखी! तरलिका! मेरा पूजा-पात्र ले आओ। मैं शीघ्र ही भगवान् भुवन-भास्कर२ की पूजा समाप्त करलूँ।

दासी—रानी जी की आज्ञा सिर-माथे। (प्रस्थान)

राजा—देवी के समीप पहुँचने का यही ठीक मौका है।

२—सूर्य।

(आकर)

दासी—रानी जी ? यह रहा पूजा-पात्र ! भगवान् सूर्य-देव की पूजा कर लीजियेगा ।

(राजा समीप पहुँच कर, परिजन को इशारे से दूर हटा, स्वयं ही पूजा-पात्र लेकर देता है) ।

सखी-(मन-ही-मन) क्या, महाराज आगये ? यह तो बहुत ही बुरा हुआ । प्रिय-सखी के तप में, राजा जी ने बाधा डाल दी ।

भानुमती—(सूर्य के सामने खड़ी होकर) भगवन् ! गगन—सरोवर के एक-मात्र कमल ! पूरब-दिशा-सुन्दरी के मुख-मण्डल के कुंकुम-तिलक ! सम्पूर्ण भुवनांगण के चिराग़ ! इस स्वप्न में जो कुछ भी बड़े-डर की बात हो !—वह भगवान् की अभिवंदना से, परिणाम में, सौ भाइयों-सहित आर्यपुत्र के लिये मङ्गल-कारी सिद्ध हो । (अर्घ्य देकर) सखी ! मुझे फूल दो । और देवताओं की भी पूजा मैं समाप्त कर लूँ ? (दोनों हाथों का पसारना)

(राजा का फूलों को समीप लेजाना तथा स्पर्श-सुख को दिखाते हुऐ फूलों को ज़मीन पर गिरा देना)

भानुमती—(क्रोध-पूर्वक) अहो ! परिजन की इतनी बेपरवाही ! (घबरा कर) क्या, आर्य पुत्र हैं ?

राजा—देवी? इस प्रकार की सेवा करने में यह जन अनभिज्ञ है—इसलिये आप जो दण्ड चाहें दे सकती हैं । (भानुमती का लज्जा से सिर झुका लेना)

राजा—

अति चंचल अँखियानि ये, श्वेत दीर्घ जिन कोर।
संभ्रम तजि तिन सों प्रिये !, लखहु दास की ओर॥
विहँसि मधुर करुणा-पगी, बोली बोलहु देवि ?
कर-अंजलि यदि दास की, छुवहु हमें सुख-देइ ॥१६॥

भानुमती—आर्य-पुत्र ! यदि आपकी, होवे आज्ञा आज।
तो कुछ करना चाहती, नाथ ! नियम के काज॥

राजा—विस्तार से हमने सुना, प्रिये स्वप्न-वृत्तान्त।
स्वभाव-कोमल देह को, क्यों यों करती क्लान्त॥

भानुमती—आर्य-पुत्र ! शङ्का मुझे, करती बड़ी अधीर।
आज्ञा करिये इसलिये, हो जिससे कुछ धीर॥

राजा—(गर्व से) देवी ? बस, डरने की कोई बात नहीं, देखो,

भू-कम्पन सब व्यर्थ है, मम यह सैन्य महान।
इस प्रकार यदि तुम दुखी, कर्ण द्रोण के बाण॥
भीरु ? कौरव-वृन्द की, भुज-छाया—आसीन !
तू दुर्योधन-सिंह की, पत्नी क्यों भय-लीन ? ॥१७॥

भानुमती—आर्य पुत्र ! नहि भय मुझे, कुछ भी रहते आप।
किन्तु यही मम चाह हो, पूर्ण-मनोरथ आप॥

राजा—सुन्दरी ? मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि अपनी प्रियतमा के साथ सदा स्वच्छन्द विहार करता रहूँ। देखो,

१राजीव-लोहित एक-टक जिसको निहारा प्यार से,
अति-मंद-स्मित-युत नहि प्रकट कुछ वचन जिसमें लाजसे।
अथवा नियम के हेतु नहि जो लाख-रस-रंजित२ प्रिये ?
दुर्लभ उसी मुख-चंद के रस-पान में उत्सुक प्रिये ? ॥१८॥

(नेपथ्य में कोलाहल का होना और सबका सुनना)

भानुमती—(भय से राजा का आलिङ्गन करके) रक्षा करो, रक्षा करो, आर्य-पुत्र ?

राजा—(चारों ओर देखकर) प्यारी ? डरती क्यों हो ? देखो,

तरुओं का जिसने किया. दिङ्-मण्डल-हिन्दोल३ ।
स-तृण धूलि के दण्ड को, उड़ाया नभ में लोल ॥
कंकरीलो मग-मध्य में, करतो झम्-झम् झूम ।
टकराकर तरु-स्कंध से, बिलसै जो सह-धूम ॥
महलों के अरु बीच में, जलद-ध्वनि-घन-घोर४ ।
भीरु ! डरो मत चण्ड यह, पवन फिरत चहुँ ओर ॥१९॥

सखी—महाराज ? इस दारु-पर्वत-वाले महल में चले जाइयेगा। यह देखिये, कैसी भयंकर आँधी है। इसने सबको दुखी कर दिया है। कठोर धूलि-कणों को उड़ा, सब की आँखें कडुवी करदी हैं। और पेड़ों को उखाड़, उनके भीषण शब्द

१—कमल के तुल्य रक्त-वर्ण। २—लाख के रस से रंगा हुआ।
३—दिशाओं का हिन्दोल। ४—बादलों की ध्वनि के समान घन-घोर=भयंकर।

से बाहर की ओर दौड़ते हुए घोड़ों ने, मार्ग पर चलना मुश्किल कर दिया है।

राजा—(हर्ष से) इस झंझानिल ने निःसन्देह दुर्योधन का बड़ा उपकार किया है। इसी के प्रसाद से, प्यारी ने सहज ही अपने व्रत को छोड़, हमारी इच्छा को पूर्ण किया है। कैसे ?—सुनो,

आँसू न आँखों में भरे, भौवें चढ़ाई हैं नहीं,
फेरा न मुँह, 'तेरी कसम !'–कह दास को रोका नहीं,
छूते हुए—मुझसे मिली स्तन-तोड़ कर भय-वेग से,
१प्यारी-नियम-हर यह अनिल २वर-मित्र बहता वेग से ॥२०॥

इसलिये मेरी सारी इच्छाएँ पूरी होगई हैं। अब प्यारी के साथ स्वच्छन्द विहार कर सकूँगा। चलो यहाँ से दारु-पर्वत-वाले महल में ही चलते हैं।

(सबका— मानो आँधी से पीड़ित होकर चलना)

राजा—तुम चलो करभोरु ? शनैः शनैः,
तरलता३ तज दो तुम हे प्रिये ?
सुतनु४ ? बाँध सुकोमल—बाहु से,
तुम मिलो मुझ से अति-चाव से ॥२१॥

(प्रवेश दिखा कर) प्यारी ! शयन—मन्दिर के चारों ओर

१—प्यारी के व्रत को तोड़ने-वाला। ३—वायु। ४—सु-सुन्दर, तनु=शरीर-वाली ?

से ढके होने के कारण, समीर इसके अन्दर नहीं आ सकता। इसलिये आँखों से धूलि-कणों को दूर कर, बे-खटके आँखें खोलो।

भानुमती—(हर्ष-पूर्वक) बड़े हर्ष की बात है—यहाँ झंझा-वात तंग नहीं करता।

सखी—जल्दी २ चढ़ने से प्यारी सखी की कोमल जाँघें थक गईं हैं। महाराज ने अभी तक पुण्यासन क्यों नहीं ग्रहण किया?

राजा—(देवी की ओर देख कर) प्यारी? झंझा-वात ने तुम्हें बहुत ही तंग कर दिया है क्योंकि,

आँखें बड़ीं—अत एव लघु[1] भी धूलि देती है व्यथा,
लघु-कम्प से भी सुस्तनी-उर हार से पीड़ित तथा।
गति-मंद में भी ऊरु चंचल [2]पृथु-जघन के भार से,
नयनादि से मिल कर पवन इसको सताता काल से ॥२२॥

(सबका बैठ जाना)

राजा—प्यारी? क्या कारण है—तुम बिना बिछे हुए ही शिलातल पर बैठ गई हो?

हिलते-वसन-वाले, पवन-चंचल-वसन-वालीं-प्रिये?
लोचन-युगल के बन्धु मेरे, नयन-लोभीं—तब प्रिये?
चिर काल तक तेरे जघन पर श्रान्ति पाने के लिये,
करभोरु! मेरी जाँघ ये पर्याप्त हैं तेरे लिये ॥२३॥

१—थोड़ी। २—स्थूल।

(परदे को हटाते हुए कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—महाराज ? तोड़ दिया ! तोड़ दिया !!

राजा—किसने ?

कंचुकी—भीमने।

राजा—किसका ?

कञ्चुकी—आपका।

राजा—आः ! क्या बकता है ?

भानुमती—आर्य-पुत्र ! आप अनिष्ट क्यों सोचते हैं ?

राजा—धिक् प्रलापी ? नीच ! वृद्ध ! तुझे आज यह कैसा भ्रम हुआ है ?

कञ्चुकी—महाराज ? नहीं, मुझे भ्रम नहीं हुआ है। मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूँ।

भीम-पवन ने तोड़ दी, रथ-वैजन्ती नाथ !
रोती-सी भू पर गिरी, घण्टा-रव के साथ ॥२४॥

राजा—प्रबल वायु के वेग से जब सारा संसार ही काँप गया, तो तुच्छ रथ-पताका की तो बात ही क्या ? अरे ! ढीठ ? फिर बक रहा है ?—तोड़ दिया ! तोड़ दिया !!

कञ्चुकी—महाराज ? यद्यपि कुछ भी धड़े-डर की बात नहीं—तो भी स्वामी-भक्ति मुझे मजबूर करती है—कि, यह अप-शकुन, महाराज पर जाहिर कर दो।—जिससे कि उसे मिटाने का उपाय किया जासके।

भानुमती—आर्यपुत्र ? प्रसन्न हुए ब्राह्मणों की वेद-ध्वनि से इसे दूर कर दीजिये।

राजा—(अवज्ञा से) जाओ। पुरोहित—सुमित्र—से कह दो।

कंचुकी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (प्रस्थान)

(आकर)

प्रतिहारी—(दुःख-पूर्वक पास आकर) जय हो! जय हो!! महाराज की। महाराज! महारानी जयद्रथ की जननी और दुःशला द्वार पर खड़ी हैं।

राजा—(कुछ सोचकर मन-ही-मन) क्या जयद्रथ-जननी तथा दुःशला आई हैं? कदाचित् अभिमन्यु के मरने से क्रुद्ध हो, पाण्डवों ने कोई अनर्थ कर डाला हो! (प्रकट) जाओ, जल्दी भेजदो।

प्रतिहारी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (प्रस्थान)

(भय-भीत जयद्रथ-जननी तथा दुःशला का प्रवेश)

(दोनों का आँसू गिराते हुए दुर्योधन के पैरों पर गिरना)

माता—कुमारजी! रक्षा करियेगा! रक्षा करियेगा!!

(दुःशला का रोना)

राजा—(जल्दी उठकर) माताजी! धीरज धरिये! धीरज धरिये!! क्या अनर्थ हो गया? युद्ध-विजयी जयद्रथ सकुशल तो हैं?

माता—प्यारे! कुशल कहाँ?

राजा—क्यों?—क्या बात?

माता—(भय से) आज गाण्डीवी अर्जुन ने, पुत्र-वध से क्रुद्ध होकर, सूर्यास्त होने से पहले ही पहले, जयद्रथ के मारने की प्रतिज्ञा की है।

राजा—(मुस्कराकर) माताजी तथा दुःशला का यही रोने का कारण है? पुत्र-वियोग से विधुर, अर्जुन के प्रलाप से (आप दोनों की) ऐसी दशा? आश्चर्य है– अबलाओं की मूर्खता पर! माताजी! दुःख भूल जाइयेगा। प्यारी दुःशला! आँसू बहाना बन्द कर। अर्जुन में इतनी सामर्थ्य कहाँ?—जो दुर्योधन की विशाल-भुजाओं से परिरक्षित महाराज जयद्रथ का बाल भी बाँका कर सके!

माता—प्यारे पुत्र! पुत्र और बन्धुओं के मारे जाने से उनकी क्रोध-वह्नि भभक उठी है—और इसीलिये वे, बिना अपने देह की परवाह किये ही समर में विचरते हैं।

राजा—(उपहास-पूर्वक) तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। पाण्डवों के क्रोध को तो सभी लोग जानते हैं। देखिये,

दुःशासन ने हुक्म से, खींचे चीरऽरु बाल।
कृष्णा के नृप—सामने, 'गौ'-'गौ' रहा पुकार॥
गाण्डीवी वह पार्थ क्या, न था वहाँ उस काल।
क्षत्रिय-वंशी युवक के, क्या न क्रोध का काल॥ २५॥

माता—प्रतिज्ञा तो इसकी (अर्जुन की) पूरी हो चुकी ! बस, यह उससे खुद ही मर जायगा।

राजा—यदि ऐसी बात है !—तो आनन्द-मङ्गल मनाने के स्थान में दुःखी क्यों हो रही हो ? माताजी ! अर्जुन अथवा अन्य किसी को क्या ताक़त है ?--जो आपके पुत्र का नाम भी ले सके ? क्या आप नहीं जानतीं कि कौरव-परिवार ने उसके महत्त्व को कितना बढ़ा रक्खा है। और फिर, कृप, कर्ण, द्रोण तथा अश्वत्थामा आदि महारथियों ने—जिसके प्रभाव को दूना कर दिया है—उसका संसार में कौन क्या बिगाड़ सकता है ? आप, अपने पुत्र के पराक्रम से, सर्वथा अनभिज्ञ हैं। देखिये,

दोनों—नकुल सहदेव अथवा धर्म-सुत ये व्यर्थ हैं,
अर्जुन तथा ये भीम दोनों भी अहो ! असमर्थ हैं।
नहि एक भी इनमें धनुष को खींचकर पूरा खड़े,
आता समझ में—जो जयद्रथ-वीर के आगे अड़े ॥२६॥

भानुमती--आर्यपुत्र यद्यपि यही, महा प्रतिज्ञा-भार ।
फिर भी भय-कारण अहो, नाथ ! करो प्रतिकार ॥

माता—ठीक है ! भानुमती ने समयोचित बात कही है।

राजा—आः ! मुझ दुर्योधन के लिये भी पाण्डव, भय के कारण हैं ? देखिये,

चाप-डोरी-चिह्न-वाले, किया शत्रु का न ध्यान,
शून्य-कवच विलसत जिनका देह है।
एक-दूसरे से टक्कर खाते छत्र-वृन्द से,
श्वेत-कमल-कानन का किया सन्देह है।

नीचे ऊपर को तथा जो चलाता तलवार को,
सूरज ढकता बरसा जो धूलि-मेह है।
भाइयों से मेरे आक्रान्त होकर ऐसा सैन्य,
चारों ओर जाता रख समर में स्नेह है ॥२७॥

और भानुमती ! तुम !—तुमने भी पाण्डवों की शक्ति को खूब पहचाना है !—जो इस प्रकार घबरा रही हो ? देखो,

दुःशासन के उर का जैसे किया रुधिर-जल-पान,
दुर्योधन के ऊरु-युगल का तथा किया [1]अवसान।
अति-बल-शाली पाण्डव-कुल का देखा रण में [2]सार,
तथा जयद्रथ-वध में भी तू जान प्रतिज्ञा-भार ॥२८॥

क्या यहाँ पर कोई है ?—मेरे जैत्र-रथ को सज्जित करो। मैं शीघ्र ही उस धृष्ट पाण्डव की प्रतिज्ञा को झूठी सिद्ध कर—अतएव लज्जा से सिर झुकाये हुए उसकी—बिना शस्त्र की, अपवित्र मृत्यु को किये डालता हूँ।

१—नाश। २—बल।

(आकर)

कंचुकी—महाराज !

आहत होकर घण्टा जिसका है सोने का बजता,
लटकते हार से जिसका द्विगुणित यह चामर हँसता।
नियमित है घोड़ा जिसका—[1]वल्गित-गति चंचल चलता,
अरि को कर यह भग्न-मनोरथ, प्रभुवर का रथ सजता॥२९॥

राजा—देवी! तुम अन्दर चली जाओ। (मैं भी 'उस धृष्ट पाण्डव की'—इत्यादि फिर बोलता हुआ घूमता है)

(सबका प्रस्थान)

॥ दूसरा अङ्क समाप्त ॥

---

1 घोड़ों की एक विशेष गति।

तीसरा अंक

——:०:——

(ग्राम्य-वेष-धारिणी राक्षसी का प्रवेश)

राक्षसी—(बुरी हंसी हंसकर सन्तोष-पूर्वक)

मरे हुए मनुजों का मांस !
हजारों घट चरबी-भरपूर !!
जहाँ तहाँ पीती मैं खून !
बरस सैकड़ों हो रण क्रूर !!१!!

(सन्तोष पूर्वक नाचती हुई) यदि जयद्रथ-बध-वाले दिन की तरह, अर्जुन, हर रोज लड़ता रहे तो मांस और खून से, मेरे घर की कोठी भरपूर भर जाय ! (घूमकर दिशाओं में नजर डाल कर) न जाने मेरा प्यारा रुधिरप्रिय कहाँ गया होगा ! अच्छा, पुकारूँगी, अरे रुधिरप्रिय ! रुधिरप्रिय !! यहाँ आ।

(राक्षस का प्रवेश)

राक्षस—(थकावट प्रकट करता हुआ)

ताजे मरे हुओं का मांस !
गरम खून अथवा मिल जाय !!

थकावट मेरी तो यह सब !
मिनट एक ही में भग जाय !!२!!

(राक्षसी का फिर पुकारना)

राक्षस—(सुनकर) अरे ! मुझे यह कौन बुलाता है ? (देखकर) क्या मेरी प्यारी वसागंधा है ? (समीप जाकर) वसागंधा ? मुझे क्यों बुला रही है ?

खून-शराब पीने में मत्त ?
युद्ध-भ्रमण से टूटी-गात ?
मुझे बुलाती क्यों तू प्यारी ?
सुना, हजार जनों का घात ॥३॥

राक्षसी—अरे ! रुधिरप्रिय ? यह मैं तेरे लिये अभी-भी मारे गये राजर्षि का, ज्यादः चरबी से चिकना ताजा २ खून और अग्रमांस लाई हूँ । इसे पीले ।

राक्षस—(सन्तुष्ट होकर) वसागन्धा ? अच्छा, तैने बहुत अच्छा किया । मुझे भी बड़ी प्यास लगी है । लेआ ।

राक्षसी—अरे ! रुधिरप्रिय ? यह बड़े अचम्भे की बात है कि लड़ाई में इतने आदमी, हाथी, घोड़े मरे पड़े हैं—जिनके खून और चरबी के समुद्र से, लड़ाई में, इधर उधर घूमना भी मुश्किल हो गया है—और तू फिर भी प्यासा है ?

राक्षस—अरी ! मज़ा उड़ाने-वाली ? मैं भी, अपने बेटे के दुख से दुखी मालकिन हिडिम्बा देवी से, मिलने गया था।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ? क्या अब भी मालकिन का, घटोत्कच के मरने का दुःख दूर नहीं हुआ।

राक्षस—वसागन्धा ? उसका दूर होना कैसा ? -सिर्फ़ अभिमन्यु के मरने से दुखी सुभद्रा देवी और द्रौपदी, उसे किसी तरह तसल्ली देती रहती है।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ? यह हाथी की खोपड़ी से इकट्ठा किया हुआ अग्रमांस है। इसे ले और खा, और ऊपर से यह खून की शराब पीले।

राक्षस—(खा-पीकर) वसागन्धा ? तो तूने कितना खून और अग्रमांस इकट्ठा किया है।

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय ? पहले जो इकट्ठा किया था—वह तो तू जानता ही है। नया इकट्ठा किया हुआ भी सुनले। भगदत्त के खून से एक घड़ा, जयद्रथ की चरबी से दो घड़े, और द्रुपद, विराट, भूरिश्रवा, सोमदत्त, बाल्हीक आदि राजाओं, और दूसरे और मामूली आदमियों के खून और मांस से भरे, अनगिनत सैकड़ों घड़े मेरे घर में मौजूद हैं।

राक्षस—(सन्तोष से आलिङ्गन करके) शाबाश ! सच्ची घर वाली ? शाबाश !! खून और मांस इकट्ठा कर रखने से, तू घरका इन्तजाम करने में बड़ी होशियार है। इसलिये

आज फिर हिडिम्बा-देवी के तरीके से मेरी जनम जनम की कङ्गाली जाती रही।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! मालकिन ने कैसा तरीका सुझाया है ?

राक्षस—वसागन्धा ? मालकिन हिडिम्बा-देवी ने मुझे हुक्म दिया है—"रुधिरप्रिय ? आज से तू आर्य-पुत्र भीमसेन के पीछे २ रण में घूमा कर—जिससे कत्ल हुए आदमियों के खून की नदी के सिर्फ देखने ही से तेरी भूख और प्यास बुझ जायगी, और यह धरती ही तेरा सुरग बन जायगी"। तू भी निडर होकर खून और चरबियों के हज़ारों घड़े भर ले।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! तू किसलिये कुमार भीमसेन के पीछे २ घूमता है ?

राक्षस—वसागन्धा ? चूँकि मालिक वृकोदर ने दुःशासन का खून पीने की कसम खायी है। और वह खून हम राक्षसों को, उसमें घुसकर, पीना है।

राक्षसी—शाबाश ! मालकिन ? शाबाश !! मेरे मालिक को अच्छा तरीका सुझाया है।

(नेपथ्य में शोर-गुल का मचना)

राक्षसी—(सुनकर डर से) अरे रुधिरप्रिय ? यह कैसा शोर-गुल मच रहा है ?

राक्षस—(देखकर) वसागन्धा ? यह देख, धृष्टद्युम्न, द्रोण के बाल खींचकर, उसे तलवार से मार रहा है।

राक्षसी—(हर्ष से) रुधिरप्रिय ? आ ! जाकर द्रोण का खून पीवें ।

राक्षस—(भय से) वसागन्धा ? यह तो ब्राह्मण का खून है !—जो गले को जला २ कर अन्दर जाता है,—इसलिये इससे क्या मतलब ?

(नेपथ्य में फिर शोर-गुल का होना)

राक्षसी—रुधिरप्रिय ? यह फिर भी शोर-गुल सुन पड़ता है ।

राक्षस—(नेपथ्य की ओर देखकर) वसागन्धा ? यह देख, अश्वथामा तलवार खींच, इधर ही चला आ रहा है । कभी धृष्टद्युम्न का सारा गुस्सा हम पर ही न उतार डाले ! इसलिये आ, यहाँ से भागें । (प्रस्थान)

प्रवेशक ।

(तलवार खींच कोलाहल सुनते हुए अश्वत्थामा का प्रवेश)

अश्वत्थामा—

महा-प्रलय की मारुत से जो,
विचलित होते हैं बादल !
उनके तुल्य प्रचण्ड-घनों की,
गर्जन-प्रतिध्वनि-सा अविरल !!
कानों में कटु चुभने वाला,
ढक भू-तल-नभ-तल-कन्दर !!
आज कहाँ से युद्धोदधि का,
अभूत-पूर्व बहा यह स्वर !! ४ !!

(सोचकर) मालूम पड़ता है कि गाण्डीवी-अर्जुन, सात्यकि अथवा भीमसेन—इनमें से किसी ने, यौवन के उन्माद में आ, मर्यादा का उल्लङ्घन कर, पिताजी को भड़का दिया है। जिससे कि उन्होंने शिष्य-प्रेम को त्याग, अपनी सामर्थ्य के अनुरूप भीषण युद्ध प्रारम्भ कर दिया है। देखिये,

गौरव-समुचित दुर्योधन के,
अस्त्र-ग्रहण के अथवा योग्य !
१राम-लब्ध अस्त्रों की अथवा,
महाशक्ति के है जो योग्य !
सकल धनु-धारियों के जग के,
है जो अधिपति के अनुरूप !
अरि-यम निश्चय कार्य जनक ने,
शुरू किया अपने २अनुरूप !! ५ ॥

(पीछे की ओर देखकर) कौन है यहाँ ?—मेरा रथ ले आओ। अथवा रथ की प्रतीक्षा करके क्या करूँगा! यह नव-जलधर-सा श्याम, स्वच्छ स्वर्ण की सुन्दर-मूठ-वाला खड्ग मेरे हाथ में है ही,—इसी को लेकर अभी समर-भूमि में उतरता हूँ। (घूमना और बाईं आँख का फड़कना) अरे! यह क्या?—युद्ध-महोत्सव से आनन्द-उमङ्ग

१—परशुराम से लब्ध=प्राप्त हुए। २—योग्य।

में भरे हुए, तथा पिताजी के पराक्रम को देखने में उत्कण्ठित, मुझ अश्वत्थामा को भी, अपशकुन, युद्ध-यात्रा से रोकते हैं! अच्छा, कोई बात नहीं। जाता हूँ। (घमण्ड से घूमकर आगे की ओर देखकर) अहो!—क्या यह भीषण कोलाहल, रण-भूमि से भागती हुई सेनाओं का है? क्षात्र-धर्म का ऐसा भयङ्कर अपमान! सत्पुरुषोचित लज्जावगुण्ठन का ऐसा तिरस्कार!! ये दुष्ट, इतने हीन-हृदय हैं कि, अपने स्वामी के सत्कार को यकायक ही भूल बैठे! क्या गज-चारी! क्या अश्व-चारी!! और क्या चरण-चारी!!!—सब के सब चारों ओर भागे ही चले जा रहे हैं? इन नीचों ने तनिक भी तो नहीं विचारा कि, क्या कुल को बट्टा लगेगा! अथवा सारा यश मट्टी में मिल जायगा!! अहो! इन भीरुओं का आज पराक्रम-व्रत कहाँ गया? (गौर से देखकर) हा! धिक्!! कितने कष्ट की बात है कि महारथी कर्णादि भी रण-क्षेत्र से भाग रहे हैं! क्या, पिताजी—सरीखे सेना-नायक के होते हुए भी, सेनाओं की इतनी दीन-हीन दशा हो सकती है? अच्छा! कोई बात नहीं!! मैं इन्हें रोकता हूँ। अरे कौरव-सेना-सागर के बन्ध-भूत नरपतियो! ठहरो, ठहरो। खबरदार! यदि रण-भूमि छोड़कर भागे तो!

रण-भूमि से मुँह मोड़ नहि यदि मृत्यु का है भय कहीं,
तो शूर-वीरो! भागने में दोष कुछ भी है नहीं।

यदि जन्म लेकर प्राणियों का मरण निश्चित मानते,
तो क्यों वृथा निज-कीर्ति पर धब्बा लगाना ठानते ॥६॥

और,

शस्त्रों की अनल से लुलित वैरियों के दल—
रूपी जलधि को किया पाण्डव-सनाथ है।
ऐसा, सकल धनु-धारियों का परम गुरु,
मेरा जनक ही जब यह सेना-नाथ है।
लौटो समर को कृप ? छोड़ दो हार्दिक्य ! डर,
तू भी कर्ण आज क्यों दे रहा भय-साथ है ?
कारण घबराने का नहीं कुछ रण-भार,
तात ने लिया लेकर चाप निज-हाथ है ॥७॥

(नेपथ्य में)

क्यों अब भी पिता का सुख-स्वप्न देख रहे हो ?

अश्वत्थामा—(सुनकर) क्या कहते हो ?—'क्यों अब भी पिता का सुख-स्वप्न देख रहे हो ?' (क्रोध से) आः ! पापियो ! युद्ध-भीरुओ ! इस प्रकार बकते हुए तुम्हारी जीभ के टुकड़े २ क्यों न हो गये ?

विश्व जलाने उष्ण-करों से, उगे न द्वादश रवि नभ में।
सप्त-रीति से भिन्न हवायें—सात बहीं नहि दिश-दिश में !!
महाप्रलय को जलधर-माला, क्या न अड़ी अम्बर-तल में ?
शौर्य-समुद्र पिता को पापो ? मृत्यु बके क्यों भू-तल में ? ८॥

(चोट लगे हुए और डरे हुए सारथी का प्रवेश)

सारथी—कुमार जी ? रक्षा करियेगा, रक्षा करियेगा। (चरणों में गिर पड़ता है)

अश्वत्थामा—(देखकर) अरे! क्या पिता जी का सारथी अश्वसेन है ? आर्य ? तुम तो त्रिलोकी के रक्षक के सारथी हो ! मुझ में यह प्राण-भिक्षा कैसी ?

सारथी—(करुणा-पूर्वक) क्यों अब भी पिता का सुख-स्वप्न देख रहे हो ?

अश्व०—(आवेग से) क्या पिता जी मर गये ?

सारथी—और क्या ?

अश्व०—हाय ! पिता जी ? (अचेत हो जाता है)

सारथी—कुमार जी ? धीरज धरियेगा, धीरज धरियेगा।

अश्व०—(सचेत होकर आँसू बहाता हुआ) हा ! पुत्र-प्रेमी, पिता जी ? हा ! त्रैलोक्य के एक-मात्र धनुर्धर ? हा ! परशुराम के विनम्र शिष्य ! कहाँ हो ? मेरी बात का उत्तर दो !

सारथी—कुमार जी ? अधिक शोकातुर न होइये। आप भी, अपने पिता के, वीरोचित गति पा लेने पर, उन्हीं के समान पराक्रम से, दुःख-सागर को तर, सुखी बनिये।

अश्व०—(रोता हुआ) आर्य ? कहो, किस प्रकार वह अतुलनीय महाबली तात भी अस्त्र हो गया ?

क्या दक्षिणा में भीम-प्रिय ने गुरु-गदा को पा लिया ?

सारथी—नहीं।

अश्वत्थामा—

प्रिय-शिष्य अथवा पार्थ से—उद्दण्ड वह मारा गया ?

सारथी—यह कैसे हो सकता है ?

अश्वत्थामा—

श्री कृष्ण ने क्या चक्र को शित धार से मारा उसे ?

सारथी—यह भी नहीं।

अश्वत्थामा—

संभव नहीं जो छोड़ इनको अन्य—जन मारे उसे ॥९॥

सारथी—कुमार जी ?

नहि एक भी इन में कुपित धनु हाथ में लेकर खड़े,
है शक्र रण में शिव-सदृश जो सामने उसके अड़े।
अति-शोक से उद्विग्न हो, उसने धनुष जब रख दिया,
रिपु-नीच ने आचार्य का तब पाप-मय वध है किया ॥१०

अश्वत्थामा—तो फिर शोक अथवा अस्त्र छोड़ने का क्या कारण है ?

सारथी—कुमार जी ही कारण हैं।

अश्वत्थामा—क्या मैं ही ?

सारथी—सुनियेगा। (आँसू टपकाता हुआ)

कहा युधिष्ठिर ने "मरा, अश्वत्थामा" स्पष्ट।
धीरे से 'गज' यह कहा, शेष वचन अस्पष्ट ॥

सुत-वत्सल आचार्य ने, सुना, किया विश्वास।
धनुष, अश्रु रण में तजे, उभय एक-निश्वास ॥११॥

अश्वत्थामा—हा! पुत्र-प्रेमी, पिता जी? हा! व्यर्थ ही मेरे लिये अपने प्राणों को निछावर करने वाले? हा! शौर्य-सागर? हा! शिष्य-प्रिय? हा! युधिष्ठिर के परम-स्नेही? (रोता है)

सारथी—कुमार जी? इस करुण-क्रन्दन को बन्द करिये। इतनी दीनता आपको नहीं सुहाती।

अश्वत्थामा—

सुनकर मरण मेरा वृथा सुत-प्रेम-वाले, तात! तू,
स्वर्लोक को हा! चल दिया निज-शस्त्र को ही त्याग तू।
बिन आपके भी फिर यहाँ पर जी रहा हूँ मैं अहो!
मुझ क्रूर में भी क्या नहीं यह प्रेम था झूठा कहो ॥१२॥

(अचेत हो जाता है)

सारथी—धीरज धरिये, धीरज धरिये, कुमारजी!

(कृपाचार्य का प्रवेश)

कृपाचार्य—(दुःख से साँस लेकर)

धिक्, बन्धु-युत कुरुराज को! धिक्कार, पाण्डवराज को!
झूठे धनुर्धारी हमें—धिक्कार! धिक् नृप-वार को!

तब द्रौपदी के केश को हमने लखा खिंचते—हुए,
हा! आज निश्चल ही लखा यह द्रोण-कच१ खिंचते-हुए॥१३

तो आज किस प्रकार वत्स अश्वत्थामा से मिलूँगा? अथवा हिमालय के समान दृढ़, जन्म-धारियों की जन्म-मरण-विधि को भलीभाँति जानने-वाले उसे, शोक से क्या काम? किन्तु पिता के अनुचित अपमान को सुनकर न जाने वह क्या करेगा? अथवा,

यह दारुण परिणाम, वसुधा में है एक का।
केश-ग्रहण का काम, विश्व-विनाशी अन्य यह॥१४॥

(देखकर) यह वत्स अश्वत्थामा बैठा हुआ है। शीघ्र ही इसके समीप चलता हूँ। (पास पहुँचकर त्वरा-पूर्वक) वत्स! धीरज धरो, धीरज धरो।

अश्वत्थामा—(सचेत होकर रोता हुआ) हाय! पिताजी? हा! सकल विश्व के एक-मात्र गुरु! (आकाश में) युधिष्ठिर! युधिष्ठिर!!

नहि तुम में ले जन्म से, असत्यता का लेश।
अजात-रिपु इससे न तुम, करते जन से द्वेष॥
द्विज-पुङ्गव२ गुरु तात में, फूटा मेरा भाग।
सहसा ही तुमने किया, सब बातों का त्याग॥१५॥

१—द्रोण के, कच=बाल। २—द्विजों में=ब्राह्मणों में, पुङ्गव=श्रेष्ठ।

सारथी—कुमारजी ! ये शरद्वत के पुत्र आपके मामाजी आपके समीप खड़े हैं।

अश्वत्थामा—(समीप में देखकर रोता हुआ) मामाजी !

रण-भूमि में तुम थे गये जिस सैन्य-पति के साथ में,
वीराग्रणी जो वीर-जन की युद्ध-१लिप्सा-शान्ति में।
परिहास होते थे निरन्तर चित्र जिसके साथ में,
मातुल ! तुम्हारी बहिन का पति वह गया किस प्रांत में? १६॥

कृपाचार्य—वत्स ! जानने योग्य बातें तुम भली भाँति जानते हो। इसलिये इतना शोकातुर होना व्यर्थ है।

अश्वत्थामा—मामाजी ! विलाप को सर्वथा तिलांजलि दे, अब तो मैं सुत-वत्सल पिताजी का ही मार्ग ग्रहण करता हूँ।

कृपाचार्य—वत्स ! तुम सरीखे पण्डितों के लिये यह कार्य अनुचित है।

सारथी—कुमारजी ! अधिक साहस मत करिये।

अश्व०—आर्य शारद्वत ?

पिता सिधारे स्वर्ग को, भय से—पुत्र-वियोग।
करता उनसे स्नेह-मय, अविरल मैं सह-योग॥ १७॥

कृप०—वत्स ! जब तक यह संसार है तबतक यह लोक-व्यवहार

१—इच्छा।

प्रसिद्ध ही है कि पुत्रों को, इहलोक तथा परलोक दोनों में, पिता का अनुसरण करना चाहिये। देखो,

श्राद्ध-क्रिया भोजन तथा, तथा जलांजलि-दान।
सेवा यह सम्भव सभी, नहीं, नहीं यदि प्राण ॥१८॥

सारथी—कुमारजी! आपके मामाजी बिलकुल ठीक कह रहे हैं।

अश्व०—आर्य! यह ठीक है, परन्तु इस असह्य दुःख-भार के कारण, पिताजी से जुदा होकर, मैं एक क्षण भी नहीं जी सकता। इसलिये मैं वहीं जाता हूँ जहाँ मृत-भी पिताजी के दर्शन कर सकूँगा। (उठता हुआ खड्ग देखकर सोच कर) आज भी मैं शस्त्र धार उसकी विडम्बना नहीं करूँगा। भगवन्! शस्त्र!

जिसने नहीं धारा तुझे अपमान होजाये कहीं,
अति-शक्ति से जिसको तथा पाई विजय थी सब कहीं।
सुत-शोक से जिसने तजा तुझको, नहीं भयके लिये,
मैं भी तजूँगा शस्त्र! तुझको स्वस्ति हो! इसके लिये ॥१९॥

(छोड़ देता है)

(नेपथ्य में)

अरे राजाओ! क्या आप लोग नहीं देखते कि इस नर-पिशाच ने, गुरु भारद्वाज को मार डाला है?—और तुम सब चुपचाप खड़े हो!

अश्व०—(सुनकर क्रोध से धीरे से शस्त्र छूकर) क्या गुरु भारद्वाज का परिभव ?

(फिर नेपथ्य में)

त्रैलोक्य-गुरु आचार्य ने जब शोक से धनु रख दिया,
रण-भूमि में अरु अश्रु-जल से वदन उनका धुल गया।
सित-मौलि को कर से पकड़ दुष्कर्म कर यह जा रहा,
सेना-शिबिर को धृष्ट धृष्टद्युम्न तू जन ! सह रहा ॥२०॥

(क्रोध से काँपते हुए कृप तथा सारथी की ओर देखकर) क्या यह ठीक है ?

धन्वी नृपों के समाने, बैठे अति-विकराल१।
अशस्त्र के सित शीष पर, मारा शस्त्र कराल२ ? ॥२१॥

कृपा०—वत्स ! ऐसा सुना जाता है।

अश्व०—क्या उस नर-पिशाच ने पिताजी के सिर को छुआ था ?

सारथी—(भय से) कुमार जी ? उस तेज:-पुञ्ज का यह नए ढङ्ग का पराभव हुआ था।

अश्व०—हा ! पुत्र-स्नेही। पिता जी ? आपने, मुझ मंद-भाग के लिये, हथियार छोड़, उस कमीने के हाथ से अपना अपमान कराया ? अथवा,

रण में निज तन को तजा, तुमने शोक-विपाक !
धृष्टद्युम्न सिर को छुए, कुत्ता अथवा काक !!

---

१ अत्यन्त दुखी। २ भयङ्कर।

शस्त्रास्त्र से सज्जित अहो, अरि ने हो उन्मत्त ।
रखा चरण मम शीष पर, नहि उसके वह हस्त ॥२२॥

आः ! दुष्ट !! पांचाल-पिशाच !!!

हथियार लेने से विमुख मम तात को जाना जभी,
निश्चिन्त होकर हाथ तूने शीष पर डाला तभी ।
तब पाण्डु-सेना के प्रभञ्जन अश्वथामा को किए ॥
नहि याद तूने दुष्ट ! क्यों?-धनु हाथ में जिसने लिया॥२३॥

युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर !! अजात-शत्रु ! सत्य-वादी ! धर्म-पुत्र! तुम सबका इसने क्या बिगाड़ा था ? अथवा इस तिनकों से ढके हुए कूप से क्या कहें ? अर्जुन ! सात्यकि ! बाहु-शाली भीमसेन ! माधव ! क्या यह आप लोगों को उचित था कि, सुर, असुर तथा मनुष्यों में एक-मात्र धनुर्धर, सब के आचार्य, वृद्ध ब्राह्मण के, तथा विशेष कर मेरे पिता के १उत्तमाङ्ग को, इस द्रुपद-कुल-कलङ्क नर-पशु के हाथ से खिंचते-हुए देखकर भी शान्त रहो ! अथवा ये सभी पापी हैं !—इनसे क्या प्रयोजन !

अनुमत जिनसे, है किया, देखा वा गुरु-नाश !
नृ-पशु जिन्होंने शस्त्र ले, तोड़ नियम का पाश !!
भीमार्जुन-युत आपके, कुटिल कृष्ण के साथ ।
शोणित-चरबी—मांस से, करता दिशा २सनाथ ॥ २४ ॥

१शिर । २ युक्त ।

कृपा०—वत्स ! भारद्वाज के तुल्य बाहुशाली और दिव्यास्त्र-विद्या-विशारद तुम्हारे लिये कुछ भी असंभव नहीं ।

अश्व०—अरे ! पाण्डव, मत्स्य, सोमक, मागध-प्रभृति नीच क्षत्रियो !

जलते अनल-सम परशु से जिस काम को उस राम ने,
गुरु-शीष छूने पर किया था, नहि सुना क्या आपने ?
उस तात के रिपु के रुधिर को अश्वथामा क्या नहीं,
क्रोधान्ध हो रण-मध्य में सुख से बखेरे सब कहीं ? ॥२५॥

सारथी ! जाओ, और संग्राम के सारे साजो—सामान तथा शस्त्रास्त्रों के सहित मेरे महाहव—लक्षण रथ को ले आओ ।

सारथी—कुमार जी की आज्ञा सिर-माथे । (प्रस्थान)

कृपा०—वत्स ! हम सब में, इस अति भयंकर अपमान की आग को—बुझाने में, आपके सिवाय, क्या और कोई भी समर्थ है ? किन्तु,—

अश्व०—आगे क्या ?—

कृपा०—आपको सेनापति का पद देकर रण-भूमि में भेजना चाहता हूँ ।

अश्व०—मामा जी ? यह बात को अपने बस की नहीं और इसकी आवश्यकता भी क्या है ?

कृपा०—वत्स ! यह बात न तो अपने बस के बाहर ही है और नाही अनावश्यक । देखो,

कौरव-सेना क्या रहे, भीष्मऽरु द्रोण-वियुक्त !
उन जैसे बलवान यदि, तुम नहि भू पर युक्त !! २६ !!

तुम यदि युद्ध के लिये तैयार हो, तो-तुम जैसों का त्रैलोक्य भी सामना नहीं कर सकता। युधिष्ठिर की सेना का तो कहना ही क्या ?—इसलिये, मेरे विचार में, कौरवेश्वर, अभिषेक के सारे सामान इकट्ठे कर, तुमसे शीघ्र ही मिलने के लिये बैठे हैं।

अश्व०—यदि ऐसी ही बात है, तो—परिभव की भयङ्कर अग्नि में जलता हुआ मेरा यह मन, उसके प्रतिकार-सलिल में स्नान करने के लिये समुत्कण्ठित हो रहा है। इसलिये मैं पिताजी के मरने से दुखी कुरुराज को, स्वयं ही सेनापति बनने की प्रार्थना से—धीरज देकर, सुखी करूँगा।

कृपा०—वत्स ! यह ठीक है।—तो चलो—वहीं चलें।

(दोनों का चलना)

(कर्ण तथा दुर्योधन का प्रवेश)

दुर्योधन – अङ्गराज !

हैं तेज-धारो तैरते हत-बन्धु के दुख-पार को,
संसार में ले हाथ में शुभ शस्त्र-रूपी नाव को।
आचार्य ने सुत के [1]निधन को युद्ध में सुनकर अहो !
क्यों शस्त्र-धारण-काल में निज-शस्त्र को त्यागा कहो !!२७!!

---

[1]=मृत्यु।

अथवा पण्डितों का यह कथन बिलकुल ठीक है कि स्वभाव का बदलना बड़ा कठिन है यदि यह बात न होती तो क्यों उसने, क्षत्रियोचित क्रूरता को छोड़, शोक के अधीन हो, ब्राह्मण-सुलभ दीनता धारण करली ?

कर्ण—राजन् ! यह बात इस प्रकार नहीं है।

दुर्योधन—तो फिर कैसे है ?

कर्ण—इसकी इच्छा तो यह थी कि अश्वत्थामा को राज-गद्दी मिले ! किन्तु, जब इसने वैसा होते नहीं देखा, तो यह सोच कि, अब मुझ वृद्ध ब्राह्मण का हथियार लेना व्यर्थ है—इसलिये इसने वैसा किया।

दुर्योधन—(सिर हिलाता हुआ) यह ठीक है।

कर्ण—और यही कारण है कि उसने, कौरव-पक्ष तथा पाण्डव-पक्ष के, इस महासमर में जूझते हुए राजाओं के परस्पर-विनाश की उपेक्षा की, और जयद्रथ आदि मुख्य-योद्धाओं को मरते देख भी चुप रहा।

दुर्योधन—तुम्हारा कथन युक्ति-युक्त है।

कर्ण—और सुनिये राजन् ! द्रुपद भी इसकी इस इच्छा को जानता था, उसने भी इसीलिये इसे, अपने राष्ट्र में रहने के लिये, स्थान नहीं दिया।

दुर्योधन—ठीक ! अङ्गराज ! ठीक !! तुमने बड़े पते की बात कही है !

कर्ण—और यह केवल मेरा ही विचार नहीं—किन्तु, अन्य समझदार मनुष्य भी, इसे झूठ नहीं समझते।

दुर्योधन—यह ठीक है! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

देकर धन्वी ने अभय, अर्जुन से म्रियमाण।
जयद्रथ को क्योंकर लखा, यदि नहि ध्येय महान ॥२८॥

कृपा०—(देखकर) वत्स! यह दुर्योधन, कर्ण के साथ, यहाँ वट-वृक्ष की छाया में बैठा हुआ है। चलो चलें।

(चलना)

दोनों—जय हो कौरवेश्वर की!

दुर्योधन—(देखकर) अये! क्या कृपाचार्य और अश्वत्थामा हैं? (आसन से उठकर कृपाचार्य की ओर को) गुरुजी! प्रणाम करता हूँ। (अश्वत्थामा को उद्देश्य करके)

गुरु-सुत! हमारे ही लिये तव तात है रण में मरा,
दो गाढ-आलिङ्गन विकल मम अङ्ग को [1]रस से भरा।
यह स्पर्श तेरी बाहु का पितृ-तुल्य ही है सर्वथा,
नहि शोक में भी रोम-गण में विकृति है जो कथा ॥२९॥

(आलिङ्गन-पूर्वक समीप में बैठाना)

(अश्वत्थामा का आँसू गिराना)

१-प्रेम।

कर्ण—द्रोण-पुत्र! अपने आपको शोकाग्नि में अधिक मत जलाओ।

दुर्योधन—आचार्य-पुत्र! इस दुःख-महोदधि में हम दोनों की एक-जैसी दशा है। देखो,

[1]प्रणयी पिता तव—था सखा मेरे पिता का हे सखे?
अरु शस्त्र-विद्या-प्राप्ति में भी तुल्य ही गुरु था सखे?
उसके मरण में दुःख को अपने कहूँ मैं क्या कथा!
तुम जानलो अति-शोक-युत मन से स्वयं मेरी व्यथा ॥३०

कृप०—वत्स! कुरुराज बिलकुल ठीक कह रहे हैं।

अश्व०—राजन! यह ठीक ही है कि, मैं आपके इन समवेदना-सूचक शब्दों से अपने शोक-भार को कम करदूँ। किन्तु,

मेरे जीते तात का, जो यह केश-विभाग!
जन सुत-शाली क्यों करें, निज पुत्रों से राग? ॥३१॥

कर्ण—द्रोण-पुत्र! इसमें क्या किया जाय!—जब कि, सबके परित्राता उसोने, शस्त्र को छोड़, अपनी वैसी दुर्गति करा ली!

अश्व०—अङ्गराज! आप क्या कहते हैं?—इसमें क्या किया जाय? सुनो, जो कुछ किया जाय!—

1—प्रेमी।

जो शस्त्र पाण्डव-सैन्य में निज-बाहु-बल-गर्वित धरे।
शिशु, युव, पलित पांचाल-कुल में गर्भ-शय्या को भरे!
जो तात-वध-साक्षी समर में सामने मेरे अड़े।
यमराज के यम कुपित मम हाथ से वह वह मरे॥ ३२॥

तथा अरे परशुराम के चेले? कर्ण?

यह देश वह पूरित सरोवर थे जहाँ रिपु-रक्त से,
यह केश-कर्षण-रूप भी परिभव हुआ है क्षत्र से।
यह शत्रु-नाशक शस्त्र-गण भी है वही जो भासता,
यह राम-सम अरि-नाश क्रोधित द्रोण-सुत विस्तारता॥ ३३॥

दुर्योधन—आचार्य-पुत्र! इसके सिवाय, तुम्हारी उस निरुपम-अपूर्व वीरता के योग्य और कुछ भी नहीं।

कृपा०—राजन्! द्रोण-पुत्र ने, अपने ऊपर बड़ा भारी, युद्ध का बोझ लेने का निश्चय किया है। यदि इसे आपकी सहायता और मिलजाय तो, मेरे विचार में, यह तीनों लोकों को भी उखाड़ फेंकने में समर्थ है? युधिष्ठिर की सेना तो फिर क्या चीज़ है? इसलिये आप इसे सेनापति बना दीजिये।

दुर्योधन—आपका कहना सर्वथा उचित है। परन्तु, यह सेनापति का पद तो-मैं अङ्गराज को पहले ही दे चुका हूँ।

कृपा०—राजन्! कर्ण के लिये, भयङ्कर अपमान तथा दुःख-सागर में डूबे हुए इसकी उपेक्षा करनी ठीक नहीं। इसे

भी वही अरि-दल दलना है। इसलिये इसे ही सेनापति बना दीजिये। अन्यथा इसे, कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

अश्व०—राजन्! क्यों अबभी व्यर्थ में उचित तथा अनुचित का विचार कर रहे हो?

प्रयत्न से स्तुति से जगो, सोओ सारी रात।
चन्द्र-कुल-नाशी करूँ, केशव-पाण्डव-घात॥
वीर-जनों का आज यह, करता हूँ संहार।
नृप-कुल-कानन का मिटे, आज महा-भू-भार॥३४॥

कर्ण—(हँसकर) द्रोण-पुत्र! यह कहना तो सहज है, किन्तु करना कठिन है। कौरवों में बहुत से ऐसे-वीर हैं जो यह काम कर सकते हैं।

अश्व०—अङ्गराज? यह ठीक है। कौरव-सेना में बहुत से वीर यह काम कर सकते हैं। किन्तु, इससे मेरा मतलब, वीर-जन के अपमान से नहीं। केवल दुखी होकर अत्यन्त शोक के आवेश में, मैं, ऐसा कह रहा हूँ।

कर्ण—मूर्ख! दुखित को आँसू बहाना, और कुपित को हथियार हाथ में लेकर समर-भूमि में उतरना चाहिये न कि इस तरह रोना-पीटना।

अश्व०—(क्रोध से) अरे रे राधा-गर्भ के भार-भूत, नीच! सारथी! दुखित मुझ अश्वत्थामा को भी आँसुओं से बदला लेने का उपदेश दे रहा है!—न कि शस्त्र से! देख,

निष्तेज गुरु के शाप से तुझसा अरे ! मम शस्त्र क्या ?
भय से अधम ! आया तथा मैं युद्ध से मुँह मोड़ क्या ?
पर-[1]वंश-कीर्तन में चतुर क्या सूत-कुल-उत्पन्न मैं ?
लूँ आँसुओं से शत्रु से बदला प्रबल असि से न मैं ? ॥३५॥

कर्ण—(क्रोध-पूर्वक) अरे रे वाचाल ! व्यर्थ ही शस्त्र धारण करने-वाले, घमण्डो ! अधकचरे ब्रह्मचारी ?

मैंने न छोड़ा शस्त्र को बल-हीन वा बल-युत तथा,
तेरे प्रतापी तात ने पांचाल से डर कर यथा।

और,

मैं सारथी, सुत सारथी का और कोई हूँ तथा,
पुराषार्थ करना काम है, कुल भाग्य-कर में सर्वथा॥३६,३७॥

अश्व०—(क्रोध से) अरे रे सारथि-कुल-कलङ्क ! राधा-गर्भ के भार-भूत ! शस्त्र-विद्या से बिलकुल अनभिज्ञ ! क्या पिता जी की भी निन्दा करता है ? अथवा,

हो भीरु वह अथवा बली भुज-बल प्रथित त्रैलोक्य में,
जो काम उसने है किया रण में—विदित इस लोक में।
साक्षी युधिष्ठिर सत्य-धन उसने तजा क्यों शस्त्र को,
तब भीरु ! पाजी ! हे अधम ! तू था भगा किस लोक को-
॥ ३८ ॥

१—दूसरे के कुल की बड़ाई करना।

कर्ण—(हँसकर) ऐसी बात है ! मैं डरपोक हूँ !! तू, न जाने ! उद्धत पराक्रमी अपने पिता को याद कर क्या कर डालेगा !—मुझे तो इसी की चिन्ता होगई है ! और अरे मूर्ख !

त्यागा यदि हथियार को, कारण क्या निःशस्त्र !
लख रिपु को करते नहीं, आते लेकर अस्त्र ?
केश-ग्रहण के भी समय, जो यह रहा [1]हताश।
नृप-[2]कुल-संमुख स्त्री-सदृश, चिरतक नीच ! उदास ॥३९॥

अश्व०—(मारे-क्रोध के काँपता हुआ) नर-पिशाच ! राजा-का प्यारा होने के कारण, इतनी धृष्टता ?—कि, ऊट-पटाँग बकने लगा ! देख,

किसी भी हेतु से उसने न रोका हो द्रुपद-नृप के—
तनय के हाथ को मेरे पिता ने दुःख से, डर के।
भुज-बल के महामद की अनल से नीच ! जलता तू,
चरण यह शीष पर तेरे अभी रखता हटादे तू ॥४०॥

(वैसा करना चाहता है)

कृपा० तथा दुर्यो०—गुरु-पुत्र! सहन करो, सहन करो। (रोकना)

कर्ण—(क्रोध से खड़ा हो, खड्ग खींचकर) अरे दुष्ट ! ब्राह्मण ? क्यों अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बन रहा है ? देख,

---

१ जिसकी आशाएँ मारी गई हों। २ राजाओं के सामने।

वध्य नहीं तू जाति से, अथवा पद उत्ताल !
छिन्न देखना खड्ग से, निपतित भू पर बाल ? ॥४१॥

अश्व०—अरे मूढ ! जाति से यदि मैं अवध्य हूँ—तो ले, यह जाति छोड़े देता हूँ।

(यज्ञोपवीत को काट देता है। फिर क्रोध से)

झूठी प्रतिज्ञा पार्थ की, करता हूँ मैं आज।
ले ले, तज दे शस्त्र वा, बना शिरोऽञ्जलि-साज ॥४२॥

(दोनों का तलवार खींचकर एक-दूसरे पर वार करने के लिए तैयार हो जाना। कृप तथा दुर्योधन का रोकना)

दुर्योधन—आचार्य-पुत्र ! शस्त्र-ग्रहण मत करो।

कृपा०—वत्स ! सूत-पुत्र ! शस्त्र-ग्रहण मत करो।

अश्व०—मामाजी ! मामाजी ! क्यों रोकते हो ? यह भी तात की निन्दा करने-वाला सूत कुल—कलङ्क धृष्टद्युम्न का ही पक्षपाती है।

कर्ण—राजन् ! राजन् ! मुझे मत रोकिये।

करें उपेक्षा मूढ़ को, बिना डराये—धीर।
क्रोधित हो यदि इसलिये, बनता झूठा वीर ॥४३॥

अश्व०—राजन् ! छोड़ दो, छोड़ दो,—इसे।—जिससे कि यह, मेरी भुजाओं में पिस, प्राण घुट २ कर मरने का मजा तो

चखले ! और राजन् ! जो आप, स्नेह से अथवा कार्य से, पिताजी की निन्दा करने-वाले इस नीच को, मुझसे बचाना चाहते हैं—वह दोनों भी आपके लिये व्यर्थ हैं। देखिये,

पापी-जन की मित्रता, कैसी सज्जन-साथ !
सूत-वंश में यह हुआ, हो तुम शशि-कुल-नाथ ॥
कुपित मुझे तुम छोड़दो, अर्जुन—जेता आज।
करता अर्जुन-कर्ण से, रहित जगत नृपराज ? ॥४४॥

(वार करना चाहता है)

कर्ण—(खड्ग उठाकर) अरे ! वाचाल ! ब्राह्मणाधम ? तुझे अभी भी—मारे डालता हूँ। राजन् ! छोड़दो, छोड़ दो—मुझे। मुझे मत रोको। (मारना चाहता है)

(दुर्योधन और कृप का रोकना)

दुर्योधन—कर्ण ! गुरु-पुत्र ! यह आप लोगों को आज, कैसा मति-विभ्रम हुआ है ?

कृपा०—वत्स ! क्या करना था और क्या करने पर तुल गये ?—यह कैसा अज्ञान है। और यह, इस समय, आप ही लोगों से, इस कौरव-सैना का संहार हो रहा है—यह उलटा काम तो ठीक नहीं

अश्व०—मामाजी ! क्या, इस सूत-कुलाङ्गार पितृ-निन्दक का घमण्ड चूर न करूँ ?

कृपा०—वत्स! यह समय—अपने सेनाध्यक्ष से विरोध करने का नहीं है।

अश्व०—मामाजो! यदि ऐसी बात है तो,

वैरी न जब तक नीच को इस समर में हैं मारते,
तब तक नहीं प्रिय-शस्त्र को भी युद्ध में हम धारते।
रहते हुए १बल-नाथ इसके, भीम-अर्जुन-भीति से,
विचलित समर में देखले नृप मित्र-बल को प्रीति से ॥४५

(खड्ग का परित्याग करना)

कर्ण—(हँसकर) शस्त्र-त्याग तो आप-जैसों का कुल-क्रमागत आचार है!

अश्व०—अरे आप-जैसों का शस्त्र-धारण भो, व्यर्थ होने के कारण, नहीं के बराबर है।

कर्ण—अरे, मूर्खराज?

जब तक धन्वो कर्ण है, अन्य करें क्या शस्त्र।
सिद्ध न कोई कर सके, जो न करे मम अस्त्र ॥४६॥

(नेपथ्य में)

आः! पिशाच! द्रौपदी के केश तथा वस्त्र खींचने-वाले महा-पातकी! नीच! कौरव! बहुत काल के बाद तू मेरे सामने आया है। क्षुद्र, पशु! अब तू कहाँ भागेगा? और

१—सेनापति।

अरे पाण्डव-द्वेषी ! कर्ण, सुयोधन, सौबल आदि अभिमानी धनुर्धारियो ! सुनें आप लोग !

जिस नीच ने खींचे सभा में बाल प्यारी के अहो।
गुरु-राज-कुल के सामने वह चीर भी खींचा अहो !
जिसके १उरःस्थल-रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी अरे !
वह बाहु-पञ्जर में फँसा मम, तू बचा कुरुराज रे ?४७॥

(सब सुनते हैं)

अश्व०—(हँसी उड़ाता हुआ) अङ्गराज ! सेना-नायक ! परशु-राम के चेले ? द्रोण का उपहास करने-वाले ! बाहु-बल से निखिल-लोकों की रक्षा करने-वाले ! (जब तक धन्वी कर्ण है' (३।४६) इत्यादि पढ़कर) यह देख, वह (परीक्षा-काल) निकट ही आ पहुँचा है। भीम के पञ्जे से इस दुःशासन को बचा।

कर्ण—आः ! क्या मजाल है वृकोदर की, जो मेरे जीते दुःशासन की छाया भी छू सके ! युवराज ! मत डरना, मत डरना। यह मैं आगया हूँ। (प्रस्थान

अश्व०—राजन् ! कौरवेश्वर ! भीष्म और द्रोण से रहित कौरव सेना को मथते हुए भीम और अर्जुन को, कर्ण अथवा उसके समान अन्य कोई भी नहीं रोक सकता। इसलिये स्वयं जाकर अपने भाई की रक्षा करो।

१—छाती का खून।

दुर्योधन—आः ! क्या ताक़त है ?—दुरात्मा भीम की अथवा किसी दूसरे की—जो शस्त्र-धारी मेरे जीवित रहते—वत्स की छाया भी छू सके ! वत्स ! मत डरना, मत डरना। अरे कौन है ?—कौन है यहाँ ? मेरा रथ जल्दी ले आओ।

(प्रस्थान)

(नेपथ्य में कोलाहल का होना)

अश्व०—(आगे देखकर) मामा जी ? कैसा भयङ्कर कष्ट है !—देखो तो—यह किरीटी—अर्जुन, कहीं भाई की प्रतिज्ञा भङ्ग न होजाय—इस डर से दुर्योधन और कर्ण पर—एक साथ बाणों की वृष्टि कर रहा है ! आखिर भीम ने दुःशासन के खून को पी ही लिया। दुर्योधन के भाई की इस (भयङ्कर) विपत्ति को मैं नहीं सह सकता। झूठ बोलना मुझे मंजूर है। मामा जी ! शस्त्र ! शस्त्र !!

सत से भी शुभ असत धिक् , स्वर्ग नरक हो वास।
त्यक्त खड्ग धर भीम से, हरूँ दुशासन—त्रास ॥४२॥

(खड्ग उठाना चाहता हूँ)

(नेपथ्य में)

द्रोण-पुत्र ! तुम महात्मा हो !—इसलिये सत्य-वचन नहीं लाँघ सकते !

कृपा०—वत्स ! यह दिव्य-वाणी तुम्हें असत्य से रोक रही है। आः, देव-गण भी पाण्डवों के ही पक्ष में है। आखिर भीम

ने दुशासन का खून पी ही लिया। अहो ! बड़ा कष्ट है।

दुःशासन के रुधिर के, पीने पर भी शान्त।
करूँ समर में और क्या, दुर्योधन-प्रिय भ्रान्त ॥४१॥

मामा जी ! कर्ण से क्रुद्ध—होकर हमने अच्छा नहीं किया। इसलिये आप भी महाराज के सहायक बनिये।

कृपा०—मैं दुःशासन को बचाने जा रहा हूँ। तुम भी छावनी को चले जाओ।

(दोनों का प्रस्थान)

तीसरा अङ्क समाप्त।

———

चौथा अंक

(रथ में अचेत पड़े हुए दुर्योधन को लेकर सारथी का प्रवेश)

(सारथी का घबराये हुए घूमना)

(नेपथ्य में)

अरे रे ! बाहु-बल के गर्व से महायुद्ध में हाथ बंटाने-वाले ? तथा कौरवों में प्रेम होने के कारण, प्राण-धन का पण लगाने-वाले, नरपतियो ! देखो, दुःशासन को मार कर, उसके पीने से बचे हुए खून में स्नान कर—भयङ्कर वेष-धारी वृकोदर को देख, ये तुम्हारी सेनाएँ, डरकर भागी जा रही हैं। इन्हें रोको।

सारथी—(देखकर) बड़े हर्ष की बात है कि यह कृपाचार्य, सफेद तथा चंचल चाँवरों से युक्त सुवर्ण-कमण्डलु-वाले, ऊपर बंधो पताका से सूचित हुए,तथा मरे हुए हाथी—घोड़ों और मनुष्यों के हजारों शवों के जमघट से—ऊँचे नीचे प्रदेशों में उछलने के कारण बजती हुई घण्टी से विभूषित—रथ पर सवार होकर, बाणों की बौछार से शत्रु-दल के वीरों को रोक, और अपनी सेना को धीरज बंधाते हुए, अर्जुन से लड़ते हुए कर्ण की सहायता कर रहे हैं। खुशी की बात है कि हमारी सेनाओं को सहारा मिल गया।

(नेपथ्य में कोलाहल के अनन्तर)

अरे ! कौरव-सेना के योद्धाओ ! हमें देख कर इतने क्यों घबरा गये कि तुम्हारे हाथों से धनुष, कृपाण, तोमर तथा शक्ति तक छूटे पड़ रहे हैं । पाण्डव-पक्षपाती योद्धाओ ? तुम से भी हमारा यही निवेदन है,—मत डरो, मत डरो। यह मैं, दु:शासन को मार उसके स्थूल-वक्षस्थल से रुधिरासव पी—उन्मत्त हुआ, अति वेग से चला आ रहा हूँ। मेरे प्रतिज्ञा-महोत्सव के पूरा होने में अब थोड़ी ही कसर बाकी है। मैं कौरवेश्वर का जुए में जीता हुआ दास, पार्थों में मध्यम, भीमसेन हूँ, और आप सब लोगों को साक्षी करके कहता हूँ। सुनिये,

दुर्योधन के सामने, धन्वी मानी वीर।
कर्ण शल्य के देखते, कुरु-स्नेही अतिधीर॥
पिया अहो अनुरक्त१, कृष्णा के कच-चीर-हर।
जीते का नव-रक्त२, तीक्ष्ण-नखों से चीर उर ॥१॥

सारथी—(सुनकर—भय से) यह क्या ?—यह दुरात्मा, कौरवाधिराज धृतराष्ट्र के पुत्र-वन को उखाड़ फेंकने वाला प्रभञ्जन—(भीमसेन)—समीप ही आ पहुँचा। और महाराज दुर्योधन अचेत पड़े हैं। अच्छा ! रथ को दूर ले जाता हूँ। कभी दु:शासन की भाँति इस में भी यह अनार्य, अनार्य कर्म न कर डाले ! (वेग से घूमकर और देखकर) अये ! यह सामने ही बड़ का पेड़ है—

१—प्रेम से। २—ताज़ा खून।

जिसके नये २ तथा सघन पत्ते, तालाब के कमलों की गन्ध-वाले शीतल समीर से नाच रहे हैं। युद्ध में थके हुए वीरों के लिये यह समुचित विश्राम-भूमि है। यहाँ ठहर, बिना माँगे ही मिले व्यजन, हरिचन्दन के समान शीतल, स्वभाव से ही सुगन्धित तथा मूर्च्छा को हरने वाली इस सरोवर की सुखद वायु से, महाराज की थकावट दूर हो जायगी। और यह टूटी-ध्वजा-वाला रथ भी, सहज ही छाया में जा सकेगा। (आकर) कौन ?– कौन है यहाँ ? (चारों ओर देखकर) यह क्या ?—क्या यहाँ पर कोई नहीं ? ठीक ! मैं जान गया। उस भीषण भीम से डरकर, तथा अपने स्वामी की यह दीन-हीन अवस्था देखकर सब के सब छावनी में जा घुसे। हाय ! क्या करूँ ! बड़ा दुःख है।

अर्जुन से देकर अभय, किया न जयद्रथ-त्राण–
द्रोणने,-मृग-सदृश लियो, भीम दुशासन-प्राण ॥
पूरा कर दुःसाध्य भी, कठिन प्रतिज्ञा-भार ।
दैव समझता आज भी, कुरु-कुल को भू-भार[1] ॥२॥

(राजा की ओर देखकर) क्या अब भी महाराज अचेत पड़े हैं। हाय ! बड़ा दुःख है। (साँस लेकर)

मद-कल करि से टूटते, वन में ज्यों इक साल ।
तुम को हत-कुरु-वंश में, लखता काल कराल ॥ ३॥

---

[1] पृथ्वी का बोझ।

अरे नीच ! विधाता ? भरत-कुल से इतना द्वेष कि,

अजित गदा ले हाथ में, होकर संशय-हीन।
भीम-शपथ यह भी अहो, पूर्ण करै मति-हीन ॥४॥

दुर्योधन--(धीरे से सचेत होकर) आः ! दुरात्मा वृकोदर की क्या मजाल है, जो मुझ दुर्योधन के जीवित रहते, अपनी शपथ कोपूरी कर सके ! वत्स ! दुःशासन ! मत डरना। मत डरना। यह मैं आगया हूँ। सारथी ! मेरा रथ वहां ले चलो जहाँ मेरा प्यारा दुःशासन है।

सारथी—राजन् ! आपके घोड़े अब-रथ ढोने में असमर्थ हैं। (एक ओर को) और मनोरथ को।

दुर्योधन--(रथ से उतर कर गर्व-पूर्वक तथा अभिप्राय से) रथ ले जाकर देर करनी व्यर्थ है।

सारथी—(अनमना सा होकर करुणा-पूर्वक) ठहरिये, ठहरिये महाराज ?

दुर्योधन—धिक् सारथे ? रहने दो रथ-युथ। मैं तो अकेला ही शत्रु-दल से टक्कर लेने वाला दुर्योधन हूँ। (क्या तू नहीं जानता ?) देख, सिर्फ गदा हाथ में ले, रण-भूमि को जाता हूँ।

सारथी—महाराज ! यह ठीक है।

दुर्योधन—यदि यह ठीक है !—तो यों क्यों बकता है ? देख,

स्वभाव से ही लाड़ले, बालक के मम नीच।
असु को लेना चाहता, सम्मुख आयुध खींच॥
मैं रक्षा में लीन, मुझे मने क्यों कर करै ?
लाज नहीं मति-हीन !, आती करुणा क्रोध वा ॥५॥

सारथी—(करुणा-पूर्वक पैरों पर सिर रखकर) मैं यह कहता हूँ,—राजन् ! इस समय दुरात्मा वृकोदर, अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लौट रहा होगा। इसलिये ऐसा कहता हूँ।

दुर्योधन—(सहसा भूमि पर गिरता हुआ) हा ! वत्स ! दुःशासन ? हा ! मेरी आज्ञा से पाण्डुओं से शत्रुता ठानने वाले हा ! अपूर्व पराक्रमी ? हा ! हमेशा मेरे समीप रहने की उत्कण्ठा-वाले ? हा ! वैरि-दल के हाथियों की गण्डस्थली को चीरने-वाले सिंह ? हा ! युवराज ? तुम कहाँ हो ? मेरी बात का उत्तर दो। (साँस खींच कर अचेत हो जाता है)

सारथी—राजन् ! धीरज धरिये, धीरज धरिये।

दुर्योधन—(सचेत हो साँस लेकर)

युवराज ! क्या सुख-भोग सब मैंने तुम्हें सौंपे नहीं ?
अथवा वृथा ही ज्येष्ठ ने मैंने तुम्हें पाला नहीं ?
हे वत्स ! इस तेरी विपद् का मैं बना कारण अहो !
तुमको जुटा रण में न जो मैं कर सका रक्षा अहो !!६॥

(यह कहकर गिर पड़ता है)

सारथी—राजन्! धीरज धरिये, धीरज धरिये।

दुर्योधन—धिक् सारथे! तुमने यह क्या किया?

रक्षणीय आदेश-कर, सतत बाल-आचार।
अनुज दुशासन ने मुझे, प्राण दिये उपहार॥ ७॥

सारथी—महाराज? महारथियों के मर्म-वेधी बाण, तोमर, शक्ति और भालों से अचेत होकर आप पत्थर की मूर्त्ति बन गये थे—इसी से रथ को भगा लाया।

दुर्योधन—सारथी? तुमने यह उचित नहीं किया।

जगाता पाण्डव-नीच का, [1]वज्र-गदा-आघात!
अनुज-रक्त के स्थान पर, होता यक्ष का घात॥ ८॥

(साँस खींचकर। आकाश में देखकर) अरे क्रूर! नीच! विधाता? भरत-कुल-द्वेषी?

मृत्यु मिले मुझको भलो, मारुति से न अनार्य!

सारथी—ऐसे अमङ्गल-वचन मत बोलिये, महाराज? यह क्या है?

दुर्योधन—

बन्धु मरे सब अब नहीं, जयरु राज्य से कार्य॥ ९॥

(बाणों के घावों पर सारे शरीर पर बधी पट्टी बाँधे हुए सुन्दरक का प्रवेश)

---

[1]—वज्र-तुल्य गदा की चोट।

सुन्दरक—सज्जनो ? क्या आप लोगों ने, इस प्रदेश में, सारथी के साथ, महाराज दुर्योधन को देखा है ?—या नहीं ? (गौर से देखकर) क्यों ?—कोई भी नहीं बोल रहा है ? अच्छा ! कमर में पेटी बाँधे-ये बहुत से मनुष्य बैठे हुए हैं—इनसे जाकर पूछूँगा । (घूमकर और देखकर) क्या ? —ये, निबिड़ कवच को भी बींध-भीतर घुसने-वाले कङ्क-मुखों से, अपने स्वामी के वक्षस्थल से, बाणों को खींच रहे हैं ? तो, ये भी नहीं जानते । अच्छा ! दूसरी ओर ढूढ़ूँगा । (आगे की ओर देखकर कुछ घूमकर) ये और बहुत से वीर-जन बटले हो रहे हैं । तो यहीं पर जाकर पूछूँगा । (पास जाकर) क्या आप लोग जानते हैं कि कुरुनाथ किस स्थान पर हैं ? (देखकर) क्यों ?—मुझे देखकर ये और अधिक रोते हैं । इसलिये इन्हें भी पता नहीं । हाय ! कितना हृदय-विदारक दृश्य है !—यह वीर-माता युद्ध में अपने लड़के को मरा सुन, लाल-साड़ी-वाली तथा सम्पूर्ण अलङ्कारों से विभूषित, अपनी पुत्र-वधू के साथ मर रही है । (प्रशंसा करता हुआ) अच्छा ! वीर-माता ? अच्छा ! दूसरे जन्म में तुम अमर-पुत्र-वाली बनोगी। अच्छा ! और जगह पूछूँगा । (दूसरी ओर देखकर) यह अन्य योद्धाओं का समूह है !—जिसने कि अनेक प्रहारों से छिन्न-भिन्न हुए-अपने शरीर के घावों की मरहम पट्टी तक नहीं की—और जो इस नङ्गी पीठ वाले घोड़े को

देखकर—उसकी निन्दा कर—रो रहा है। निश्चय इनका स्वामी यहीं पर मारा गया है। तो, ये भी नहीं जानते। अच्छा! और स्थान पर जाकर पूछूँगा। (सब ओर देखकर) क्या सभी, अपने २ योग्य दुःख का अनुभव करते हुए, भाग्य के प्रतिकूल होने से व्याकुल हो रहे हैं? इसलिये यहाँ अब किससे पूछूँगा! और किसे बुराई दूँगा!! अच्छा! मैं स्वयं ही यहाँ पर ढूढ़ूँगा। (घूमकर) अच्छा! भाग्य को अब कोसूँगा। अरे भाग्य! ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं के अधिराज, सौ भाइयों में बड़े, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, कृतवर्मा, कृप, अश्वत्थामा आदि प्रधान राज-मण्डल के स्वामी, और सकल पृथ्वीतल के एकमात्र अधिपति, महाराज दुर्योधन भी ढूँढ़े जा रहे हैं—और ढूँढ़ने पर भी-नहीं पता चलता कि वे किस स्थान पर हैं! (सोचकर और सांस लेकर) अथवा इस विषय में भाग्य को क्यों कोसूँ? विदुर का अनादृत वचन ही जिसका बीज है, पितामह का तिरस्कृत हितोपदेश ही जिसका अंकुर है, शकुनि की उत्तेजना-आदिक ही जिसकी जड़े हैं, चिरकाल से बंधा बैर ही जिसका थाँवला है—और द्रौपदी का केश-कर्षण ही जिसका फूल है—यह तो उस, लाख-गृह-प्रभृति कपट-रूप विष-वृत्त का फल भोग रहा है। (दूसरी ओर देखकर) मालूम होता है कि ज़ो यह, यहाँ, अनेक रत्नों की कांति से युक्त, सूर्य-किरणों से उत्पन्न हजारों इन्द्र-धनुषों से दिङ्‌ मण्डल को जगमग

करने वाला, पताका-शून्य रथ दीख पड़ता है—निश्चय यही महाराज दुर्योधन का विश्राम-स्थान है। जरा ग़ौर से देखता हूँ। (समीप जाकर देखकर और साँस लेकर) कैसे अचरज की बात है कि ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं को अधिपति होकर भी, महाराज दुर्योधन, साधारण पुरुष की भाँति, अपवित्र भूमिपर बैठे हुए हैं। अथवा यह उस पाँचाली के केश-ग्रहण का फल भुगत रहे हैं।

(समीप आकर सारथी से इशारे से पूछता है)

सारथी—(देखकर) अये ! क्या संग्राम-भूमि से सुन्दरक आये हैं ?

सुन्दरक—(समीप पहुँचकर) जय हो, जय हो, महाराज की।

दुर्योधन—(देखकर) क्या सुन्दरक है ?—सुन्दरक ? अङ्गराज सकुशल तो हैं ?

सुन्दरक—महाराज ? शरीर-मात्र से।

दुर्योधन—क्या किरीटी ने उसके घोड़े मार दिये ? सारथी मार गिराया ? या उसका रथ तोड़ डाला ?

सुन्दरक—राजन् ? केवल रथ ही नहीं तोड़ा, इसका मनोरथ भी।

दुर्योधन—क्यों, संदिग्ध-वचनों से मेरे दुखी दिल को, और अधिक दुखी कर रहे हो ? सब कुछ साफ २ कहो।

सुन्दरक—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। अये ! देव की मुकट-मणियों के प्रभाव से मेरी युद्ध-वेदना शान्त होगई। सुनिये

राजन् ! इस समय कुमार दुःशासन की मृत्यु—(आधा कह चुकने पर मुँह ढक भय का अभिनय करता है)

सारथी—सुन्दरक ? भाग्य ने कह ही दिया।

दुर्योधन—कहो। हम सुन चुके।

सुन्दरक—(मन-ही-मन) यह क्या ?–क्या महाराज, दुःशासन की मृत्यु का समाचार सुन चुके ! (प्रकट) सुनिये महाराज ? आज, जब स्वामी अङ्गराज ने, कुमार दुःशासन के वध को सुना, तो उनकी त्योरियाँ बदल गईं। उनका भीषण तथा विशाल मस्तक, मारे क्रोध के दमकने लगा और इस तेजी से दुराचारी दुःशासन-वैरी भीमसेन पर बाणों की बौछार की, कि यही न पता लगता था कि कब वे उन्हें धनुष पर चढ़ाते और कब छोड़ते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि वह दुष्ट पाण्डव एक पग भी आगे न बढ़ सका।

दोनों—तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? दोनों पक्षों के, परस्पर टकराने से चमकते हुए हाथी, घोड़े तथा पैदल-सेना से उड़ाई हुई धूल से तथा मृत हाथियों के ढेर से, इतना अँधेरा छा गया कि, दोनों ओर की सेनाएँ अन्धी हो गई। आकाश-मण्डल का दीखना बन्द हो गया।

दोनों—तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? कान तक पूरा खींचे गये धनुष की, भीषण तथा गम्भीर टङ्कार—ऐसी प्रतीत होती थी कि मानों प्रलय-कालीन बादल गरज रहे हों !

दुर्योधन—तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? एक दूसरे के सिंह-नाद से एक दूसरे को पहचानने वाले उन दोनों की युद्ध-वृष्टि देखते ही बनती थी। उस उद्भुत युद्ध-वृष्टि में, छोड़े गये हथियारों से टकराकर कवचों से निकली हुई आग ही चमचमाती विद्युत् थी, गम्भीर शब्द करते हुए चाप ही जलधर थे, और चलते हुए बाण ही—हजारों धाराएं थी।

दुर्योधन—तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? इसी बीच में अपने बड़े भाई के परिभव की आशङ्का से, धनजय ने, अपने श्रेष्ठ-रथ को, जिसकी ध्वजा के अग्रभाग पर महावानर, वज्र की घोर ध्वनि के समान चीत्कार कर रहा था, रथ चलाते हुए श्री कृष्ण को, शङ्ख, चक्र, असि और गदा से चिन्हित चारों भुजाओं से जिसकी ओर देखना दूभर हो गया था, तथा बजते हुए—श्री कृष्ण के पाञ्चजन्य और अर्जुन के देवदत्त नामक शङ्ख की भयंकर—ध्वनि से जिसने दशों दिशायें भर दी थी—उसी ओर दौड़ाया।

दुर्योधन—तब, फिर !

सुन्दरक—तब भीमसेन और अर्जुन दोनों से लड़ते हुए अपने

पिता को देखकर, जल्दी में अपने रत्न-जटित मुकट को दूर फेंक तथा कान तक कठिन-कोदण्ड की प्रत्यञ्चा को खींचकर, कुमार वृषसेन ने, दाहिने हाथ से तूणीर से बाणों को निकाल—उनके पुङ्खों से सारथी को जल्दी करने को कहा—और शीघ्र ही उस स्थान पर आ पहुँचा।

दुर्योधन—(घमण्ड से) तब, फिर !

सुन्दरक—और उसके अनन्तर महाराज ? विदलित असि-लता के समान काले और चिकने-पुङ्खों-वाले, कङ्क-पक्षियों के दृढ पङ्खों से युक्त, काले २ तथा शाण पर घिसने से तेज-धार वाले बाणों से, कुमार वृषसेन ने आते ही, अर्जुन के रथ को, पुष्पित वृक्ष की भाँति, ढक दिया।

दुर्योधन—तब, फिर।

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? अर्जुन ने, पैने २ भल्ल-नामक बाणों की वर्षा करते हुए, मुस्कराकर कहा—अरे रे ! वृषसेन ? क्रुद्ध मेरे सामने तेरे पिता को भी नहीं ठहरना चाहिये। तुझ सरीखे बच्चे की तो बात ही क्या ? इसलिये जा, भगजा। दूसरे बच्चों के साथ जा कर लड़। इस बात को सुन तथा अपने पिता का अपमान हुआ जान कर, कुमार वृषसेन का मुख-मण्डल, मारे क्रोध के रक्त-वर्ण हो गया और तीवरों पर बल पड़ गये, और धनुर्धारी उसने, मर्मवेधी अति तीक्ष्ण बाणों को कान तक खींच

कर, उनसे, गाण्डीवी-अर्जुन-को झिड़का, न कि दुष्ट-वचनों से।

दुर्योधन—धन्य वृषसेन ? धन्य !! सुन्दरक ? तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अन्तर महाराज ? पैने बाणों की चोट से उपत्न हुई वेदना से क्रुद्ध हो, अर्जुन ने, प्रचण्ड गाण्डीव की डोरी को, वज्र-तुल्य टङ्कारा और बाणों की वृष्टि से देखना तक बन्द कर, अपनी बल-विद्या का आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाया।

दुर्योधन—(अभिप्राय से) तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? शत्रु के इस विचित्र रण-कौशल को देखकर, कुमार वृषसेन ने भी, पहले से भी कहीं अधिक ज़ोर से युद्ध करना शुरू कर दिया।—जिस से कि यही न पता लगता था कि, कब वह अपने हाथ को तूणीर तक ले जाता है और कब उसे, धनुष की डोरी पर लाता है—तथा—कब वह डोरी पर बाण चढ़ाता है और कब उसे छोड़ता है।

दुर्योधन—तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? इस समय, कौरव-पक्ष के तथा पाण्डव-पक्ष के सभी योद्धा, लड़ना छोड़ कर और कुछ काल के लिये शत्रुता को सर्वथा तिलाञ्जलि दे—'शाबाश ! वृषसेन ? शाबाश !!'—इस प्रकार चिल्लाकर उन दोनों की लड़ाई देखने लगे।

दुर्योधन—(आश्चर्य से) तब, फिर !

सुन्दरक—और उसके अनन्तर महाराज ? संपूर्ण धन्वी राजाओं को अवधीरणा-करने-वाले अपने पुत्र के—उस आश्चर्य-जनक युद्ध-नैपुण्य को देख, हर्ष, क्रोध तथा करुणा के संकट में पड़े स्वामी अङ्गराज की बाण-वर्षा तो—भीमसेन पर गिरी और अश्रु-पूर्ण दृष्टि—कुमार वृषसेन पर ।

दुर्योधन—(भय से) तब, फिर !

सुन्दरक—और उसके अनन्तर महाराज ? दोनों ओर की सेनाओं के साधु-वाद से कुपित होकर गाण्डीवी अर्जुन ने, घोड़ों पर, सारथी पर, रथ पर, धनुष पर, धनुष की डोरी पर और राजा के चिन्ह-भूत श्वेत छत्र पर भी, एक ही साथ बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी ।

दुर्योधन—(भय से) तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? जब कि कुमार वृषसेन के, रथ, डोरी और धनुष—सब के सब कटकर गिर पड़े, तो उसने खड्ग हाथ में उठाकर मण्डलाकार-गति से, रण में, घूमना शुरू कर दिया ।

दुर्योधन—(भय से) तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? पुत्र-रथ के टूटने से क्रुद्ध हो, स्वामी अङ्गराज ने, भीमसेन के वारों को उपेक्षा करते हुए, अर्जुन के ऊपर बाण-वृष्टि छोड़ दी । कुमार वृषसेन

भी, परिजन से उपनीत अन्य रथ पर चढ़, फिर भी अर्जुन से लड़ने लगे।

दोनों—शाबाश ! वृषसेन ? शाबाश !! तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? कुमार वृषसेन बोले—अरे रे ! पिता जी की निन्दा-करने-वाले बकवादी ? मध्यम पाण्डव ? देख, मेरे बाण तेरे शरीर को छोड़ अन्यत्र नहीं गिरते—यह कह कर हजारों बाणों से, अर्जुन के शरीर को ढक, सिंह-नाद करने लगा।

दुर्योधन—(आश्चर्य से) अहो ! इस सुन्दर तथा कोमल स्वभाव वाले बालक-का भी ऐसा अद्भुत विक्रम ! तब, फिर !

सुन्दरक—और उसके अनन्तर महाराज ? उस शर-वृष्टि की अवहेलना[1] कर तीक्ष्ण-बाणों की चोट से क्रुद्ध हो किरीटी -अर्जुन-ने, रथ के बीच में से, शब्द करती हुई स्वर्ण-घण्टिका की झङ्कार के समान झन्-झन् करती हुई, मेघ-हीन आकाश की तरह निर्मल, तीक्ष्ण, श्याम तथा चिकने-मुँह-वाली और विविध-रत्नों की प्रभासे चमचमाती हुई—भीषण तथा रमणीय-दर्शन-वाली शक्ति को उठाया, और वृषसेन की ओर उसे फेंका।

दुर्योधन—(दुःख से) अहह ! तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? उस जलती हुई शक्ति को देख, अङ्गराज के हाथ से धनुष-बाण गिर पड़ा, हृदय से

---

१ बेपरवाही।

वीरोचित उत्साह जाता रहा, और आँखों से अश्रु-धारा बह निकली, तथा वृकोदर, सिंह के समान गरज उठा। और 'बहुत बुरा हुआ, 'बहुत बुरा हुआ'—इस प्रकार कौरव-सेना चीख उठी।

दुर्योधन—(दुःख-पूर्वक) तब, फिर!

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज? तीक्ष्ण बाण को कान तक खींचकर कुमार वृषसेन ने, बहुत देर तक देख, विषम-लोचन भगवान् शङ्कर ने मन्दाकिनी के समान, बीच-मार्ग में ही, उस शक्ति के तीन टुकड़े कर दिये।

दुर्योधन—शाबाश! वृषसेन? शाबाश!! तब फिर!

सुन्दरक—और उसके अनन्तर महाराज? मधुर—कलकल-युत वीरों के साधु-वाद से, रण-भेरी का शब्द फीका पड़ गया, सिद्ध-गण तथा चारणों ने ऊपर से फूल बरसा कर समराङ्गण को ढक दिया, और स्वामी अङ्गराज बोले—'वीर वृकोदर! यद्यपि तुम्हारी और हमारी लड़ाई, अभी समाप्त नहीं हुई, फिर भी थोड़ी देर के लिये मेरी बात मानो। आओ आज जरा अच्छी तरह से, वत्स वृषसेन तथा तुम्हारे भाई के धनुर्विद्या-नैपुण्य को देखें! तुम्हें भी यह देखना चाहिये'।

दुर्योधन—तब, फिर!

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज? युद्ध करना छोड़ और

थोड़ी देर के लिये शत्रुता को भी भूल, भीमसेन और अङ्गराज, दोनों—दर्शक बन गये।

दुर्योधन—(अभिप्राय से) तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ? शक्ति-खण्डन से कुपित अर्जुन ने कहा—'अरे रे ! दुर्योधन-प्रमुखो ?—(इतना कह चुकने पर लज्जा का अभिनय करना)

दुर्योधन—सुन्दरक ? कहो। ये दूसरे के वचन हैं।

सुन्दरक—सुनिये महाराज ? 'अरे दुर्योधन-प्रमुखो ! कौरव-सेना के अधिपतियो ! और उद्भुत उद्धत कर्ण ? तुम लोगों ने, बहुत से महारथियों के साथ, मेरे पीछे, मेरे असहाय पुत्र अभिमन्यु को मारा था, मैं फिर तुम सबके देखते ही-देखते, इस कुमार वृषसेन को यमलोक भेजता हूँ। यह कह कर उसने, बड़े गर्व से, वज्र तथा निर्घात के समान भयङ्कर ध्वनि करती हुई—प्रत्यञ्चा से युक्त गाण्डीव को टंकारा। स्वामी ने भी अपने काल-पृष्ठ-नामक धनुष को सँभाला।

दुर्योधन—(आकार को छिपाता हुआ) तब, फिर !

सुन्दरक—और उसके अनन्तर महाराज ? गाण्डीवी ने, भीमसेन को लड़ने से रोक, अङ्गराज तथा वृषसेन के—रथ-रूपी किनारों को तोड़ने-वाली, दो बाण-धाराएँ छोड़ीं। उन दोनों ने भी, पारस्परिक स्नेह के कारण, अपने २ धनुर्विद्या-

कौशल को, और दिनों की अपेक्षा कहीं बढ़ चढ़ कर दिखाया। तथा उस नीच मध्यम-पाण्डव को एक पग भी आगे न बढ़ने दिया।

दुर्योधन—तब, फिर!

सुन्दरक—और उसके अनन्तर महाराज? गाण्डीवी ने—जिसकी कि बाण-वर्षा का अनुमान, केवल घन-ध्वनि के समान गर्जने-वाली प्रत्यञ्चा से ही होता था, बाणों की वृष्टि से वह कृत्य किया कि, क्या आकाश, क्या स्वामी (कर्ण), क्या रथ, क्या पृथ्वी, क्या कुमार, क्या केतु-वंश, क्या सेनाएँ, क्या सारथी, क्या घोड़े, क्या दिशाएँ और क्या योद्धा-गण—कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

दुर्योधन—(आश्चर्य से) तब, फिर!

सुन्दरक—और उसके अनन्तर महाराज? बाण-वर्षा के समाप्त होते ही पाण्डव-सेनाएँ सिंह की भाँति गर्ज उठीं। और कौरव-सेना में रोना-पीटना पड़ गया। तथा 'हा! कुमार वृषसेन मारा गया! 'हा! कुमार वृषसेन मारा गया!!—इस प्रकार भीषण कोलाहल मच गया।

दुर्योधन—(आँसू रोकते हुए) तब, फिर!

सुन्दरक—उसके अनन्तर, हे राजन्! मैंने, स्वर्ग से गिरे दिव्य-बालक के समान, हृदय-मर्म को बींधने-वाले बाण से भिन्न-देह, उस बालक को रथ के मध्य में पड़े हुए देखा। उसके

रथी और घोड़े मर चुके थे। और उसके धनुष, छत्र, चामर और केतु-वंश—सब के सब नष्ट हो गये थे।

दुर्योधन—(आँखों में आँसू भर) अहह! कुमार वृषसेन! इस से आगे सुनना व्यर्थ है। हा! वत्स! कुमार वृषसेन! हा! मेरी गोद के परम-प्रेमी? हा! गदा-युद्ध में निपुण? हा! कर्ण-कुलांकुर? हा! सुन्दर-दर्शनों-वाले? हा! दुःशासन से अभिन्न! हा! सब गुरु-जनों के प्यारे? मेरी बात का उत्तर दो।

सुविशाल आँखें हैं जहाँ, नव-चन्द्र सा १कमनीय जो,
खिलती-हुई नव-यौवनावस्था-अधिक-२मदनीय जो।
मृदु-प्राण के अपहार में तब दृष्टि जिसमें थी फिरी,
मुख-पद्म पर उस—कर्ण की हा! दृष्टि कैसी थी गिरी?
॥ १० ॥

सारथी—राजन्! अधिक दुखी मत होइये।

दुर्योधन—दुःख भी, पुण्य-शालियों को ही मिलता है। हमारे लिये तो,

बन्धु मरे सब सामने, परिभव की यह आग!
हृदय जलाती, दुःख क्या, तथा व्यथा का राग ॥११॥

(अचेत होना)

१—सुन्दर। २—सुन्दर।

सारथी—धीरज धरिये, धीरज धरिये, महाराज ? (वस्त्रांचल से हवा करना)

दुर्योधन—(सचेत होकर) भद्र ! सुन्दरक ! तब, वयस्य अङ्गराज ने क्या किया ?

सुन्दरक—उसके अनन्तर, हे राजन् ! अपने पुत्र की वैसी दशा देख कर--गिरे आंसुओं की उपेक्षा कर--स्वामी अङ्गराज ने, शत्रु के वारों को सहते हुए, अर्जुन को, युद्ध के लिये ललकारा। और पुत्र-वध से क्रुद्ध हो विशेष पराक्रम करते हुए उसे देखकर, नकुल, सहदेव तथा धृष्टद्युम्न-प्रभृति महारथियों ने बीच में आ, अर्जुन के रथ को अदृश्य कर दिया।

दुर्योधन—तब, फिर !

सुन्दरक—उसके अनन्तर, हे राजन् ! शल्य ने कहा,—'अङ्गराज ? तुम्हारे रथ के घोड़े मर चुके हैं और उसका युगंधर—(ऊँटना)—भी टूट चुका है। इसलिये भीम और अर्जुन के साथ तुम्हारा लड़ना ठीक नहीं।' इसके बाद उसने दूसरा रथ बदला, और स्वामी—अङ्गराज—को, टूटे रथ से उतार, अनेक प्रकार से धीरज दिया। तब स्वामी ने, बहुत काल तक विलाप करके, परिजन से उपनीत दूसरे रथ पर दृष्टि डाल लम्बा सांस खींच मेरी ओर देखा। और 'सुन्दरक ? जरा यहां तो आओ'—यह कहा। तब, मैं, स्वामी के समीप गया। मेरे पास पहुँचते ही स्वामी ने

अपने शिर से एक पट्टी को फाड़ और देह से टपकती खून की बूँदों में बाण के अग्र-भाग को भिगो—लिखकर —यह सन्देश, श्री चरणों में भेजा है—

(पट्टिका को देता है)

(दुर्योधन लेकर बाँचता है)

'स्वस्ति ! महाराज दुर्योधन को, समर-भूमि से, कर्ण, कण्ठ में गाढालिङ्गन-पूर्वक यह अन्तिम संदेश भेजता है।

आयुध-विद्या में निपुण, रण में नहि उपमान !
अनुज-वृन्द से भी अधिक, पाण्डव जेय महान ॥
मुझ में यह विश्वास, तदपि दुशासन-शत्रु को।
नहि मारा, दुख-नाश, कर भुज से वा अश्रु से' ॥१२

दुर्योधन—वयस्य कर्ण ! यह क्या ? सौ भाइयों के वध से दुखी मुझे, इस दूसरे बाण-रूप शल्य से, क्यों ?—और अधिक विचलित करते हो ? भद्र ! सुन्दरक ? इस समय अङ्गराज क्या कर रहे हैं ?

सुन्दरक—महाराज ? अब भी आप 'क्या कर रहे हैं,—यह पूछते हैं ! शरीर से कवच को हटा, अपने प्राणों को हथेली पर रखकर, फिर भी अर्जुन से लोहा लेना चाहते हैं ।

दुर्योधन(—सहसा आसन से उठता हुआ) सारथी ? रथ ले आओ। सुन्दरक ? तुम भी शीघ्र जाकर वयस्य अङ्गराज को, मेरी

ओर से कहदो कि अधिक साहस करना व्यर्थ है। हम दोना का एक ही संकल्प है। मैं भी तुम्हारी ही तरह प्राणों की आहुति देने का इच्छुक हूँ। किन्तु,

कर पार्थ का वध, अश्रु-अञ्जलि बन्धुओं को दे तथा,
तज बाष्प वैरी-मन्त्रि-गण के साथ में मैं सर्वथा।
कर गाढ आलिङ्गन परस्पर फिर न करने के लिये,
हत-देह को इस मैं तजूँगा दुःख-सुख में मन दिये ॥१३॥

अथवा शोक के विषय में मुझे कुछ भी नहीं कहना। क्योंकि,

सुत वृषसेन तथा अनुज, नहीं दुशासन आज!
धीरज दूँगा क्या तुम्हें, तुम मुझ को अँगराज? ॥१४

सुन्दरक—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (प्रस्थान)

दुर्योधन—जल्दी हो रथ ले आओ।

सारथी—(कान लगाकर) महाराज? पहियों का तथा घोड़ों का—सा शब्द सुन पड़ता है। इससे मालूम होता है कि कोई परिजन अवश्य ही रथ लेकर आया है।

दुर्योधन—सारथी? तुम जाओ। तैयार करो।

सारथी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (प्रस्थान और फिर प्रवेश)

दुर्योधन—(देखकर) क्यों नहीं रथ पर सवार हुए?

सारथी—महाराज? ये तात और अम्बा—दोनों—संजय के

साथ रथ पर बैठ, महाराज के समीप आये हैं।

दुर्योधन—क्या तात और अम्बा—दोनों—पधारे हैं? बड़ा कष्ट है! दैव ने यह बड़ा बीभत्स काम किया है। सारथी? तुम जाओ, शीघ्र ही रथ ले आओ। मैं भी पिता जी से आँखें चुरा, एकान्त में बैठता हूँ।

सारथी—महाराज! आप अकेले हो तो, इनके बचे हुए बन्धु हो! आप इन्हें धीरज क्यों नहीं बंधाते?

दुर्योधन—सारथी? भाग्य ही जब प्रतिकूल है, तो मैं किस प्रकार धीरज दूँ? देख,

मिल तात अम्बा से गये दोनों जने रण-रङ्ग में,
सूँघा उन्होंने शीष उसका विनत मेरे सङ्ग में।
वह बाल बल से भीम से मारा गया उस रीति से,
निर्घृण पिता-अम्बा-निकट जा क्या कहूँगा प्रीति से?॥१५॥

फिर भी माता—पिता को वन्दना करनी ही चाहिये!

(दोनों का चलना)

चौथा अङ्क समाप्त।

पाँचवाँ अंक।

(रथ-सहित गान्धारी, संजय तथा धृतराष्ट्र का प्रवेश)

धृतराष्ट्र—संजय ? कहो, कौरव-वन का एकमात्र बचा हुआ अंकुर, मेरा प्यारा दुर्योधन, किस स्थान पर है ?

गान्धारी—प्यारे ! यदि सत्य ही मेरा प्यारा जीता है, तो बताओ ? वह किस स्थान पर है ?

सञ्जय—यह देखिये, महाराज अकेले ही वट-वृक्ष की छाया में बैठे हैं !

गान्धारी—(करुणा से) प्यारे ! 'अकेले !'—ऐसा कहते हो ? क्यों ?—उसके सौ भाई उसके समीप नहीं हैं ?

सञ्जय—तात ? अम्मा जी ? रथ से स्वेच्छा पूर्वक उतर जाइयेगा। (सब का उतरना)

(लज्जित तथा बैठे हुए दुर्योधन का प्रवेश)

सञ्जय—(समीप जाकर) जय हो महाराज की। महाराज ? ये तात और अम्मा दोनों, आपके पास आये हैं। क्या महाराज नहीं देखते ?

(दुर्योधन लज्जा का अभिनय करता है)

धृतराष्ट्र—कर कङ्क-पत्रों[1] से जुदा शर-जाल को, सन्नाह[2] को,
सब घाव बंधने पर शनैः रख कर्ण पर निज शीश को।
हारे हुए सान्त्वित नृपों को दूर से लखते तुझे,
'क्या सह्य यह दुख' पुत्र ?—यों नहि पाप ने पूछा तुझे॥१॥

(धृतराष्ट्र और गान्धारी छूते हुए आकर आलिङ्गन करते हैं)

गान्धारी—प्यारे पुत्र ? गहरे घावों की पीड़ा से संतप्त तुम्हारे मुँह से, हमारी उपस्थिति में भी—बात नहीं निकलती।

धृतराष्ट्र—प्यारे दुर्योधन ? क्या मुझ से भी नहीं बोलते ? ऐसा तो तुमने पहले कभी किया नहीं !

गान्धारी—प्यारे ! यदि तुम ही हम से न बोलोगे, तो क्या हम से, दुःशासन, दुर्मर्षण या कोई और बोलेगा ?

(रोती है)

दुर्योधन—
बदला नहीं मैंने लिया निज भाइयों के नाश का,
कारण हुआ मैं जनक के अरु अम्ब ? तेरे बाष्प का।
इस पुण्य-कुल में भरत के दुर्जात मुझ को हे सती ?
क्यों पुत्र-घातक को वृथा ही पुत्र अपना मानती ॥२॥

गान्धारी—प्यारे पुत्र ? रोओ मत। तुम्हीं इस अन्धे युगल के

---

१ बाण निकालने के लिये संडासी की तरह की कोई वस्तु।
२ कवच।

एक मात्र सहारे हो। परमात्मा तुम्हें चिरजीवी बनाये! मुझे, राज्य अथवा जय कुछ नहीं चाहिये।

दुर्योधन—

हे मात? कितने आज तू आरत वचन है कह रही,
क्यों क्षत्र-कुल में जन्म लेकर अम्ब? आतुर हो रही?
हैं सैकड़ों बच्चे मरे तेरे न उन में प्रेम क्यों?
मुझ नीच में ही आज इतना प्रेम-हीने? प्रेम क्यों?३॥

यह निश्चय ही पुत्र-शोक की माया है।

सञ्जय—महाराज? क्या यह लोक-वाद झूठा है कि 'घड़ा यदि कुए में गिर जाय तो रज्जु भी उस में नहीं फेंक देनी चाहिये?

दुर्योधन—यह बात सब जगह लागू नहीं। उपकार-भाजन ही न हो तो उपकार-साधन से क्या? (रोता है)

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन कर) प्यारे पुत्र? धीरज धरो। और मुझे, और अपनी इस अति-दीन माता को धीरज दो।

दुर्योधन—पिता जी? अब आप लोगों को धीरज देना कठिन है। किन्तु,

कुन्ती-बालक मारूँगा,
बदला अपना मैं लूँगा।
कुन्ती-साथ दुखी दोनों,
बच्चों को सोचो दोनों॥४॥

गान्धारी—प्यारे पुत्र ? अब तो यही बहुत है कि, एक मात्र बचे हुए-तुम भी, हमारे लिये दुःख के कारण मत बनो। इसलिये प्यारे पुत्र ? प्रसन्न हो जाओ। यह तेरे आगे हाथ जोड़ती हूँ। लड़ना-भिड़ना बन्द करो। अपने पिता को आज्ञा को अन्तिम मत करो। देखो,

अति-शक्ति-शाली द्रोण वह अरु भीष्म भी मारा गया,
वृषसेन मारा सामने जग पार्थ से है डर गया।
मारे गये सब पुत्र तुझ में ही प्रतिज्ञा शेष है,
तज मान अन्धे युगल को पालो अभी कुछ शेष है॥ ५॥

दुर्योधन—युद्ध छोड़कर और क्या करना होगा ?

गान्धारी—प्यारे पुत्र ? जो कुछ तुम्हारे पिताजी या विदुर कहें।

संजय—महाराज ? यह उचित है।

दुर्योधन—संजय ? क्या क्या अब भी कुछ उपदेश करना बाकी है ?

संजय—महाराज ? प्राण रहने तक विजिगीषु, पण्डितों के उपदेश का पात्र है।

दुर्योधन—(क्रोध से) जरा हम भी, तेरे ही जैसे पण्डित से, अपने योग्य उपदेश को सुनें !

धृतराष्ट्र—प्यारे पुत्र ? संजय ठीक ही तो कहते हैं। उनमें क्रोध क्यों करते हो ? यदि तुम तनिक शान्त हो जाओ तो मैं ही तुमसे कहता हूँ। सुनो !

दुर्योधन—कहिये, पिताजी ?

धृतराष्ट्र—प्यारे पुत्र ? अधिक क्या ? तुम अब भी, उचित शर्त पर, युधिष्ठिर से सुलह करलो।

करता अरि से संधि नृप, यदि उससे वह हीन।
दु:शासन के मरण में, क्यों सुत-पाण्डु अहीन ॥६॥

धृतराष्ट्र—यह सब कुछ सही ! किन्तु, यह कदापि नही हो सकता कि, युधिष्ठिर, मेरी प्रार्थना को अङ्गीकार न करे ! एक बात और भी है। युधिष्ठिर, सब वस्तुओं को, दैवाधीन मानता है।

दुर्योधन—कैसे ?

धृतराष्ट्र—प्यारे पुत्र ? सुनो, युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा।—"मैं एक भी भाई के मर जाने पर नहीं जिऊँगा।" क्योंकि संग्राम में अनेक छल चले जाते हैं—इसलिये युधिष्ठिर को हमेशा यह आशङ्का बनी रहती है कि कहीं उसका कोई भाई न मारा जाय ! यही कारण है कि वह, जब भी तुम चाहो, संधि करने के लिये तैयार है।

दुर्योधन—पिताजी ? पुत्र-प्रेम से दुखी होकर माताजी, तथा अज्ञ होने से संजय, भले ही ऐसा कह दे ! किन्तु, आपको, तो यह मति-विभ्रम नहीं सुहाता। अथवा, पुत्र-नाश से उत्पन्न हृदय का ताप प्रबल होता है। और पिताजी ? जब कि सब भाइयों के रहते, जिसने, उस समय, श्रीकृष्ण

की संधि-चर्चा को नहीं माना था—वह दुर्योधन, आज भीष्म, द्रोण, छोटे भाई और सब राजाओं के मारे जाने के बाद, एकमात्र आत्म-स्वार्थ से प्रेरित होकर, सत्-पुरुषों के लिये लज्जा-जनक और जिसका कि भविष्य दुखमय हो!—पाण्डवों के साथ ऐसी संधि को कब मानेगा? नीति-शास्त्र को जानने-वाले संजय! एक बात और भी है। देख,

संजय—यह बात ठीक है।

गान्धारी—प्यारे पुत्र? अपने पिता की युक्ति-युक्त बात को मानो।

दुर्योधन—पिता जी? माता जी? संजय?

बिन एक के भी पार्थ ने की है प्रतिज्ञा प्राण की,
सौ भाइयों के नाश में मुझको पड़ी है त्राण की।
क्या उस दुशासन-रुधिर के रिपु को गदा से मारके,
चहुँ भीम को फेंकूं नहीं? हत-सन्धि को विस्तार के? ॥७॥

गान्धारी—हाय! प्यारे दुःशासन? हा मेरी गोद के परमस्नेही? हा! युवराज? दुनिया में ऐसी मौत किसी की भी नहीं सुनी गई। हाय! हत-भागिनी गान्धारी? तूने, सौ दुःख पैदा किये हैं, न कि सौ पुत्र।

(सब का रोना)

संजय—(आँसू गिराकर) तात? अम्मा जी? आप दोनों,

यहाँ, महाराज को समझाने-बुझाने आये थे। अपने आपको तो सम्हालियेगा।

धृतराष्ट्र—प्यारे दुर्योधन ? भाग्य की ऐसी प्रतिकूलता में, और तुम्हारे, अब भी, शत्रु-विषयक अभिमान को न छोड़ने पर, तुम्हीं जिसके एक-मात्र आधार हो, वह यह तपस्विनी गान्धारी, और मैं, किसका सहारा लें और किसकी शरण जायें ?

दुर्योधन—सुनिये, इस समय जो कुछ करना चाहिये।

जीता जगत, छोड़ा विभव, नीचा दिखाया शत्रु को,
नृप-वृन्द ने जिनके तथा आगे झुकाया शीष को।
अरि सामने जो मारते सुत वे मरे रण-रङ्ग में,
दुख-भार को धारो सगर-सम अम्ब-युत तुम विश्व में॥८॥

यदि ऐसा न हुआ तो क्षात्र-धर्म का उल्लंघन होगा।

(नेपथ्य में भीषण कोलाहल का होना)

गान्धारी—(सुनकर भय से) हाहाकार से मिला हुआ, बाजों का यह महाशब्द, कहाँ से आ रहा है ?

सञ्जय—अम्माजी ? भीरुओं के दिल को दहलाने-वाले, इस प्रकार के भीषण शब्दों का, यह स्थान है।

धृतराष्ट्र—वत्स ! संजय ! देखो, यह क्या है ? यह तो चारों ओर फैलता हुआ बड़ा ही भयङ्कर हाहाकार है ? इससे जान पड़ता है कि इसका कारण—कोई मामूली नहीं।

दुर्योधन—पिताजी ? प्रसन्न हो जाइये। भाग्य ही हमारे प्रतिकूल है। इसलिये, वह जबतक, कोई अन्य बहुत बुरी बात नहीं सुनाता—मुझे शीघ्र ही संग्राम में जाने की आज्ञा दीजिये।

गान्धारी—प्यारे पुत्र ? मुझ हत-भागिनी को, थोड़ी देर के लिये तो धीरज बँधाओ !

धृतराष्ट्र—प्यारे पुत्र ? यद्यपि तुमने समर में जाने की ठान ली है, फिर भी, एकान्त में, शत्रु-वध का उपाय सोचो।

दुर्योधन—

मारे सहोदर सामने, एकान्त-वध कौलीन है,
अरि-तुल्य रण में प्रकट नहि यदि वध करूँ फल-हीन है!

गान्धारी—प्यारे पुत्र ? तुम असहाय हो। तुम्हारी मदद कौन करेगा ?

दुर्योधन—

मैं एक सुत-घातक तुम्हारा अम्ब ? अरि-कुल अल्प है,
यदि भाग्य केवल साथ दे भू पाण्डवों से शून्य है ॥९॥

(नेपथ्य में कोलाहल के बाद)

भाई योद्धाओ ? आप लोग कौरवेश्वर से कहदें कि बड़ा भारी संग्राम छिड़ गया है। इसलिये अप्रिय सुनने से मुँह मोड़ना निष्फल है। क्योंकि, यह काल, समयोचित उपाय करने का है। देखियेगा,

१हय-रश्मियों को छोड़कर, अर्जुन-शरों से भिन्न हो,
रथ-वर्त्म-परिचय से शनैः हय-वृन्द से आकृष्ट हो।
उत्सुक जनों को नेत्र-जल से कर्ण-विधि२ कहता हुआ,
ले शून्य रथ जाता शिविर को शल्य दुख देता हुआ॥१०

दुर्योधन—(सुनकर भय से) आः ! कौन यह, वज्र-पात के सदृश, दारुण घोषणा कर रहा है ? अरे, कौन ?—कौन है यहाँ ?

(आकर भयभीत)

सारथी—हा ! मर गये !! (भूमि पर गिर पड़ता है)

दुर्योधन—अये ! कहो।

धृतराष्ट्र, सञ्जय—कहो, कहो।

सारथी—राजन ? और कुछ नहीं।

३शल्य-तुल्य इस शल्य से, सब जन मूर्च्छा-लीन।
मन-रथ पर आरूढ़ जनु, रथ पर कर्ण-विहीन ॥११॥

दुर्योधन—हा ! प्यारे मित्र ? कर्ण ? (अचेत हो जाना)

गान्धारी—प्यारे पुत्र ! धीरज धरो, धीरज धरो।

सञ्जय—धीरज धरिये, धीरज धरिये महाराज ?

धृतराष्ट्र—अरे, महाकष्ट है !

१—हय=घोड़ा, रश्मि=रास। २—कर्ण का भाग्य। ३—वाक्य का अगला भाग।

भीष्म द्रोण के मरण में, था जिसका अवलम्ब।
पुत्र-मित्र यह शूर भी, कर्ण मरा अविलम्ब ॥१२॥

वत्स ! धीरज धरो, धीरज धरो। अरे नीच विधाता ?

सौ बालकों के नाश का मैंने सहा दुख अन्ध में,
है पा लिया पत्नी-सहित इस दुर्दशा को मन्द ने।
मारे गये गुरु, बन्धु-बान्धव, मित्र-जन, जिसके अहो !
तू नीच ? दुर्योधन-निधन का भी किये है प्रण अहो !॥१३

वत्स ? दुर्योधन ? धीरज धरो, धीरज धरो। और अपनी इस तपस्विनी माता को धीरज बँधाओ।

दुर्योधन—(सचेत होकर)

बोलो बोलो रस-पगी, तुम मुझसे अँगराज !
मुझमें दर्शाती हुई, अविचल प्रेम-सुराज ॥
रहा सदा जो यार, तजकर उस प्रिय-मित्र को।
किया न कुछ अपकार, क्या सुत-वत्सल ! जारहे ?॥१४॥

(फिर अचेत होना)

(सब का धीरज बँधाना)

दुर्योधन—

प्राणों से भी प्रिय बुरा, हुआ कर्ण का घात।
जीवित भी नत-शीश हूँ, धीरज की क्या बात ॥१५॥

और,

उस वत्स दुःशासन-मरण का शोक कुछ मुझको नहीं,
उन बन्धुओं के नाश का भी आज दुख मुझको नहीं।
अति-घोर यह दुष्कर्म जिसने है किया प्रिय-कर्ण में,
उसके करूँगा वंश को निःशेष मैं रण-रङ्ग में॥ १६॥

गान्धारी—प्यारे पुत्र? क्षण-भर के लिये तो रोना बन्द करो।

धृतराष्ट्र—प्यारे पुत्र? क्षण-भर के लिये जरा आँसू पूछलो।

दुर्योधन—

नहि रोका मेरे लिये, किया प्राण-परित्याग।
मत रोको उसके लिये, करता अश्रु-त्याग॥ १७॥

सारथी? बताओ तो सही, किसने, हमारे वंश का उच्छेद करने की इच्छा से, यह असम्भव काम किया है?

सारथी—राजन्! ऐसा सुना जाता है कि,

वसुधा में रथ मग्न, कृष्ण-सूत के बाण से।
हुआ कर्ण रण-मग्न, अर्जुन के सेना-शमन॥ १८॥

दुर्योधन—कितने दुःख की बात है कि,

१शोकोदधि २विक्षुब्ध, ३कर्ण-शशि-वदन-स्मरण से।
पीत ४क्रोध-उद्बुद्ध, ५पावक से ६वाडव-सदृश॥ १९॥

१—शोक-रूपी समुद्र। २—चलायमान। ३—कर्ण के मुख-रूपी चाँद के याद हो आने से। ४—क्रोध से उत्पन्न हुए। ५—आग। ६—समुद्र की आग।

पिता जो ? माता जी ? प्रसन्न हो जाइयेगा।

शोकानल अति दुखद यह, तपाता मेरा देह।
दुःख बरोबर है तदपि, इष्ट समर-सन्देह ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन कर रोता हुआ)

सहसा किये हों काम जो सन्देह उनमें है सदा,
यह दिल दहलता सोचकर वह भीम की भीषण गदा।
अभिमान के पुतले ? समर में कृत्य तव छल-हीन है,
संग्राम में अरि-गण तुम्हारा 'हा ! मरा'!! छल-लीन है ॥२१॥

गान्धारी—प्यारे पुत्र ? क्या उसी, मेरे सौ बेटों को मारने वाले वृकोदर के साथ, लड़ने की ठानी है ?

दुर्योधन—वृकोदर को तो रहने दो।

जिस पाप ने मारा—हृदय का जो मनोरथ-रूप था,
सर्वाङ्ग-सुख-दायी, नयन को विमल-इन्दु-स्वरूप था।
हे मात ! तव सुत, तात ! तेरा नीति में जो शिष्य था,
उस कर्ण के रिपु के हृदय में आज हो शर की व्यथा ॥२२॥

सारथी ? बस ! अब अधिक देर मत करो। मेरा सज्जित रथ ले आओ। यदि तुझे पाण्डवों से डर मालूम होता है—तो ठहर। केवल गदा ही हाथ में लेकर समर में मैं उतरता हूँ।

सारथी—आप उलटा ख्याल न करियेगा। यह मैं अभी-भी आ रहा हूँ। (प्रस्थान)

धृतराष्ट्र—वत्स ! दुर्योधन ? यदि तुमने, हमारा सर्व-नाश करने के लिये, लड़ने की ठान ही ली है—तो अनेक वीर मौजूद हैं। उनमें से किसी को सेनापति चुनलो।

दुर्योधन—वह तो पहले ही चुन लिया।

गान्धारी—प्यारे ? वह कौन है !—जिसमें कि मैं आस बाँधूगी।

धृतराष्ट्र—या तो शल्य होगा या अश्वत्थामा।

संजय—कितने दुःख की बात है कि,

प्रबल भीष्म के मरने पर,
द्रोण कर्ण के गिरने पर।
आशा प्रबल बड़ी राजन् ?
जेय शल्य से पाण्डव-जन ॥ २३ ॥

दुर्योधन—(क्या शल्य से या अश्वत्थामा से ?)

कर्ण-मिलाप कराने-वाला !
पार्थ-प्राण वा हरने-वाला !
निरन्तर अश्रु-सलिल से तात ?
अभिषिक्त होता मेरा गात ॥ २४ ॥

(नेपथ्य में कोलाहल के बाद)

अरे कौरव-सेना के प्रधान वीरो ? हमें देखकर इधर उधर मत भागो। बताइयेगा आप लोग—सुयोधन किस स्थान पर है ?

(सबका घबराकर सुनना)

(आकर घबराया हुआ)

सारथी—राजन् ?

एक रथ पर आये इस ओर,
पूछते हुए तुम्हें चहुँ ओर।

सब—कौन, कौन ?

सारथी—

कर्ण-शत्रु तुम यक को जानो,
भीषण भीम अन्य को मानो ॥ २५ ॥

गान्धारी—(डरती हुई) प्यारे पुत्र ? इसका क्या उपाय किया जाय ?

दुर्योधन—माता जी ! यह गदा पास में रक्खी है।

गान्धारी—हाय ! मैं, मन्द-भागीनी, मर गई !!

दुर्योधन—माता जी ? इस समय दीनता का क्या काम ? संजय! रथ पर बैठकर इन दोनों को शिविर में लेजाओ। हमारे दुःख को दूर करने-वाले पुरुष आगये हैं।

धृतराष्ट्र—प्यारे पुत्र ? क्षण-भर ठहरो, ताकि इन दोनों के अभिप्राय को जानूँ !

दुर्योधन—पिता जी ? इसके जानने से क्या नतीजा ?

(भीम तथा अर्जुन का प्रवेश)

भीम—अरे ! सुयोधन के वेतन-भोगियो ? तुम लोग इधर उधर क्यों भागे फिरते हो ? हमसे मत डरो।

मानी, धली जो द्यूत में, १जतु-गृह-दहन में हेतु जो,
हैं दास पाण्डव, २द्रौपदी-कच-चीर-हर्त्ता वायु जो।
नृप जो दुशासन-प्रभृति का, गुरु भाइयों का है कहाँ ?
प्रिय-कर्ण दुर्योधन कहो, हम प्रेम से आये यहाँ ॥२६॥

धृतराष्ट्र—संजय ? इस दुष्ट के बालने का तरीका बड़ा ही बेढब है ?

संजय—तात ! कर्म से सब बुराइयाँ कर चुके हैं, और अब वाणी से कर रहे हैं।

दुर्योधन—सारथी ? दोनों से जाकर कह दो कि यहाँ बैठे हैं।

सारथी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (उनके समीप जाकर) भीमसेन ! अर्जुन ! यह महाराज, तात और अम्बा जी के साथ, वट-वृक्ष की छाया में बैठे हैं।

अर्जुन—आर्य ? मैं एक अनुग्रह चाहता हूँ। हमें यह उचित नहीं कि पुत्र-शोक से पीड़ित माता-पिता को,—इनके समीप

१—लाख-घरके जलाने में। २—द्रौपदी के बाल और चीर को हराने वाला।

जाकर उन्हें और अधिक पीड़ा पहुँचायें। इसलिये चलिये चलें।

भीम—मूर्ख! शिष्टाचार का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। गुरुओं को बिना अभिवादन किये नहीं जाना चाहिये। (समीप पहुँच कर) संजय? तात और अम्मा दोनों से हमारा नमस्कार कह दो। अथवा ठहरो। स्वयं ही नमस्कार करते हैं। (दोनों का रथ से उतरना)

भीम—अपने कारनामे और नाम बताकर गुरुओं की वन्दना करनी चाहिये।

अर्जुन—(समीप जाकर) पिता जी? अम्मा जी?

सारे शत्रु-विजय की आशा जिस में बाँधी तव सुत ने,
तृण-सम परिभव किया जगतका जिसके अतिगर्वित बलने
उस राधिका-सुत के प्राण को, है लिया जिसने रण में,
प्रणाम करता पितरों को मैं मध्यम यह पाण्डव-गण में॥
॥ २७ ॥

भीम— संपूर्ण कौरव-वंश को जिसने किया विध्वस्त है,
कर पान दुःशासन-रुधिर का जो हुआ उन्मत्त है।
जिसने सुयोधन को किया उरु-भङ्ग का भी काम है,
यह भीम वह करता तुम्हें हे तात! अम्ब! प्रणाम है॥२८॥

धृतराष्ट्र—दुष्ट, वृकोदर? सिर्फ तू ने ही, वैरियों का अपकार नहीं किया। किन्तु, सभी क्षत्रियों ने, वीरों को जीता और मारा

भी है। तो क्यों इतना, अपने मुँह मिया मिट्ठू बन, हमें दुखी कर रहा है ?

भीम—पिता जी ! क्रोध न कीजिये।

जिसने सबके सामने, खींचे प्यारी-बाल।
पतङ्ग-सम वह जल गया, पड़ मम क्रोध-ज्वाल॥
तुम्हें सुनाता इसलिये, नहि बल से या मान।
पुत्रों के दुष्कर्म में, साक्षी निज को जान॥२९॥

दुर्योधन—अरे रे ! वायु-पुत्र ? क्यों इस तरह बूढ़े राजा के सामने, अपने निन्दनीय काम की तारीफ़ कर रहा है ? और,

थे केश खींचे द्रौपदी के तुम सभी के सामने,
आदेश दे दासी बनाया सब नृपों के सामने।
इस वैर में हैं जो मरे नृप, क्या बिगाड़ा था अरे ?
भुज-बल-धनी मुझ को बिना जीते करे क्यों मान रे॥३०॥

(भीम का क्रोध प्रकट करना)

अर्जुन—आर्य ? प्रसन्न हो जाइये। इस में क्रोध करना व्यर्थ है।

कहता केवल कटु वचन, करने में असमर्थ !
भ्रातृ-मरण-दुख से दुखी, शान्त ! कथन सब व्यर्थ॥३१

भीमसेन—अरे रे ! भरत-कुल-कलङ्क !

क्या न यहीं पर नर-पशु! तेरे–प्राणों को मैं हरता!
इसी समय बकवादो ? तू, दु:शासन-गति को पाता।
तीक्ष्ण-नखों से खण्डित यह, अस्थि-पुञ्ज[1] चटचट बजता
यदि नीच ! नराधम ? विघ्न नहीं अर्जुन इसमें करता।
॥ ३२ ॥

अरे मूर्ख ? और सुन।

अश्रु गिराये शोक से, ललना-सम[2] हे पाप ?
दु:शासन-उर-भङ्ग को, देखा तैने आप ॥
जीवन का यह कुनृप के, था भीषण परिणाम।
[3]कुरु-कुल-नलिनी-करि-सदृश, भीम हुआ जब वाम[4] ॥

दुर्योधन—अरे दुष्ट! भरत-कुल-नीच! पाण्डव-पशु! मैं तेरी तरह अपने मुँह मिया मिट्ठू नहीं हूँ। किन्तु,

शीघ्र निहारेंगे तुझे, पाण्डव रण में सुप्त।
[1]गदा-भिन्न-उर-अस्थि के, भीषण-भूषण-युक्त ॥३४॥

भीमसेन—(हँसकर) यदि ऐसी बात है ?–तब तो आप पर भरोसा करना चाहिये! फिर भी निकट भविष्य की बात कहता हूँ।

[2]विपुल-बाहु से गदा घुमाकर तेरी जाघें तोड़ूँगा,
कल प्रभात में सबके लखते चरण शीश पर मारूँगा।

---

१ हड्डियों का समूह। २ स्त्री के तुल्य। ३ कुरु-वंश-रूपी कमलिनी के लिये हाथी के तुल्य। ४ विरुद्ध।

मार तुम सब को मैं बहते, रुधिर-चंदन से रँग लूँगा,
गाढ आर्द्र से, नख तक तन सब भीषण भूषण पहिनूँ गा॥
॥ ३५ ॥

(नेपथ्य में)

अरे भीमसेन ! और अर्जुन ! ये श्रीमान् अजात-शत्रु, महाराज युधिष्ठर, सब शत्रुओं को मार कर, परशुराम के तुल्य सुन्दर यश को प्राप्त करके, और निज-प्रताप से सारी दिशाओं को जीत—उनमें अपने सामन्तों को नियुक्त कर, समाज्ञापित करते हैं।

दोनों—क्या आज्ञा है महाराज की ?

(फिर नेपथ्य से)

रण में निहत नर-वृन्द की अन्त्येष्टि बान्धव-जन करें !
जल-दान बान्धव बन्धु-गण को अश्रु-युत दुख से करें !
गृध्रादि-खण्डित बन्धु-शव ३हत-जन-विपिन में ढूँढलें !
अरि अस्त रवि-सम होगया, निज-सैन्य को संहृत करें ॥३६॥

दोनों—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (दोनों का प्रस्थान)

(नेपथ्य में)

अरे रे गाण्डीव-धारी ! बाहु-शाली ! अर्जुन ! अर्जुन ! अब कहाँ जा रहा है !

---

१ गदा से तोड़ी गई छाती की हड्डी। २ स्थूल। ३ मरे हुए मनुष्यों का जङ्गल।

धारा नहीं विजयो धनुष अब तक कुपित हो कर्ण में,
विक्रम बहुत तुमने किया भट-हीन वन-सम युद्ध में।
कर याद कच-ग्रह तात का, जिसने अजित धनु रख दिया,
१पाँडव-द्रुपद-सुत-बल-दहन यह द्रोण-सुत मैं आगया॥३८॥

धृतराष्ट्र—(सुनकर हर्ष-पूर्वक) वत्स ! दुर्योधन ! द्रोण-वध के परिभव से आग-बबूला हुआ, पिता से भी अधिक बल-वाला, तथा धनुर्विद्या में पारङ्गत, देव-तुल्य अश्वत्थामा आया है। इसलिये अगुवानी कर, इस वीर का सम्मान करो।

गान्धारी—प्यारे ? इस महाभाग की अगुवानी करो।

दुर्योधन—तात ? अम्मा जी ? कर्ण की मृत्यु के अभिलाषी और वृथा ही यौवन और हथियार के बोझ को ढोने वाले इससे क्या मतलब ?

धृतराष्ट्र—वत्स ? यह वक्त ही ऐसा है कि ऐसे वीरों को, वाणी से भी नाराज़ नहीं करना चाहिये।

(आकर)

अश्व०—जय हो, कौरवेश्वर की !

दुर्योधन—(उठकर) गुरु-पुत्र ? यहाँ बैठो। (बैठना)

अश्व०—राजन् ! दुर्योधन !

१-पाण्डवों तथा द्रुपद-सुत=धृष्टद्युम्न की सेना का संहार करनेवाला

श्रवण-मधुर जो कर्ण ने, कहे वचन बहु-भाँति।
किया समर में जो तथा, विदित तुम्हें सब भाँति॥
द्रोण-पुत्र यह आगया, रिपु-संमुख धनु तान।
नरपति! चिन्ता छोड़दो, २प्रतिकृति की सुमहान॥३८॥

दुर्योधन—(असूया से) आचार्य-पुत्र?

मरने पर प्रिय कर्ण के, लड़ना तुम द्विज-वर्ण?
मुझको भी मृत देखलो, एक सुयोधन कर्ण॥ ३९॥

अश्व०—(मन-ही-मन) क्यों?—अब भी कर्ण में वही पक्षपात? और वही हमारा निरादर? (प्रकट) राजन्! कौरवेश्वर! अच्छा! यही सही। (प्रस्थान)

धृतराष्ट्र—वत्स? यह कैसी मूर्खता है—जो इस विपत्काल में भी, अश्वत्थामा सरीखे महापुरुष को, कठोर वचनों से भड़का रहे हो?

दुर्योधन—मैंने इसे, कौनसा अप्रिय और असत्य वचन कह डाला! क्या यह बात भड़काने वाली नहीं? देखिये,

धनु-धारी नहि क्षत्रिय-कुल ने—जिसके बल को पहिचाना,
रण-स्थली में मरना जिसका, भाग्य-दोष हो से जाना।
अङ्गराज प्रिय-मित्र कर्ण की, संमुख यह निन्दा करता,
भेद नहीं मैं इससे इसमें अर्जुन में अथवा करता॥ ४०॥

२—प्रतिकार।

धृतराष्ट्र—वत्स ! इसमें तुम्हारा भी क्या दोष है ? भरत-कुल का यह विनाश-काल है। संजय ? मैं भाग्य-हीन, इस समय क्या करूँ ? (सोचकर) यह सब कुछ सही है, फिर भी सञ्जय ? तुम मेरी ओर से भारद्वाज अश्वत्थामा से कहदो।

स्तन साथ में इसके पिया था, याद क्या तुमको नहीं ?
निज-अङ्ग-मर्दन से मलिन मेरा वसन भूले नहीं ?
हत-बन्धु-जन के दुःख से अति प्रीति से अथवा कहे,
कटु जो वचन उनमें वृथा क्यों क्रुद्ध इतने हो रहे ?४१॥

सञ्जय—जो तात का आदेश। (उठ जाता है)

धृतराष्ट्र—और यह और भी कह देना।

कह झूठ जो तेरे जनक का शस्त्र था रखवा दिया,
सित केश-मण्डल खींच जो परिभव तथा उसका किया।
यह सोचकर सब भाँति तुम, निज शक्ति को, पुरुषार्थ को
सब भूलकर उसके वचन अब तुम करो परमार्थ को ॥४

सञ्जय—जो तात का आदेश ! (प्रस्थान)

दुर्योधन—सारथी ? मेरा युद्ध-रथ ले आओ।

सारथी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (प्रस्थान)

धृतराष्ट्र—गान्धारी ? चलो, हम यहाँ से मद्राधिप शल्य के शिविर को चलें। वत्स ! तुम भी अपनी बात पूरी करो।

(सब का प्रस्थान)

॥ पाँचवाँ अंक समाप्त ॥

छठा अंक

—:०:—

(आसन पर बैठे हुए युधिष्ठिर, द्रौपदी, दासी और पुरुष का प्रवेश)

युधिष्ठिर—(सोचकर और साँस लेकर)

तैरा भीष्म-महोदधि दुख से, शांत किया द्रोणानल को,
कर्ण भयंकर [1]विषधर मारा, शल्य पठाया सुरपुर को।
सहसा साहस-पूर्ण वृकोदर, पूर्ण-विजय की आशा में,
संशय-कारण बना शपथ से सबकी जीवन-आशा में ॥१

द्रौपदी—(आँसू बहाती हुई) महाराज ? 'पाँचाली ने'—यह क्यों नहीं कहा ?

युधिष्ठिर—नहीं कृष्णा ? मैंने । (पुरुष की ओर देखकर) बन्धुक !

पुरुष—महाराज ? आज्ञा करियेगा ।

युधिष्ठिर—सहदेव से कहदो—"अभिमानी कौरवराज दुर्योधन, यह जानकर कि, क्रुद्ध भीमसेन की प्रतिज्ञा आज ही पूर्ण होनी चाहिये—कहीं छिप गया है। इसलिये अत्यन्त

१—साँप ।

निपुण, वस्तु-तत्त्व-वेदी तथा दुर्योधन के पद-चिन्हों को जानने-वाले गुप्त-चरों से तथा स्वामी-भक्त सचिवों से कह दो कि वे डंके की चोट, समन्त-पंचक (कुरुक्षेत्र) के चारों ओर घूमें और उसका पता लगायें। उन्हें यह भी कह दिया जाय कि उन्हें, इसके बदले में, धन, मान और प्रत्युपकार के सत्कृत किया जायगा। और,

'धीवर चरें! २पद-चिन्ह-वित् जल, रेत में वा पङ्क में,
अरु गोप परिचित ३वल्लिका-गण से चरें! चहुँ कुञ्ज में।
सब व्याध घूमें! बाघ-वन में ४गर्त-पर-पद-विज्ञ जो,
मुनि-आश्रमों में चर चरें! ५मुनि-वेष-विनिमय-भिज्ञ जो"
॥ २ ॥

पुरुष—महाराज की आज्ञा सिर-माथे।

युधि०—ठहरो। सहदेव से यह भी कहना,

एकान्त में भय-भीत होकर बात हों जो कह रहे,
रोगी तथा उन्मत्त-जन अथवा मनुज जो सो रहे।
वन में मृगों के त्रास को या पक्षियों के शब्द को,
जानो तथा मछली-विभूषित-चरण-अंकित पन्थ को ॥३

२—पैरों के निशान को पहचानने वाले। ३—लताएँ। ४—गर्त=गुफ़ा तथा दूसरों के पद-चिन्हों को जानने वाले। ५—मुनि का वेष बदलने में चतुर।

पुरुष—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (जाकर फिर आकर हर्ष-पूर्वक) महाराज ? पांचालक आये हैं।

युधि०—जल्दी भेजो।

पुरुष—(जाकर और पांचालक के साथ आकर) यह महाराज बैठे हैं। पांचालक ! इनके पास चले जाओ।

पांचालक—जय हो, जय हो, महाराज की। महाराज और देवीजी को एक प्रिय बात सुनाता हूँ।

युधि०—क्या उस दुरात्मा के मार्ग का पता लग गया ?

पांचालक—सिर्फ़ मार्ग ही नहीं, किन्तु—रानीजी के केश-पाश के-स्पर्श-रूप महापाप का प्रधान कारण वही मिल गया।

युधि०—धन्यवाद !—इस प्रिय-निवेदन के लिये। क्या, किसी ने उसे देखा है ?

पांचालक—राजन् ! "क्या उसके साथ युद्ध छिड़ गया" ?—यह पूछिये।

द्रौपदी—(डरती हुई) क्यों ?—क्या नाथ लड़ रहे हैं ?

युधि०—(घबराकर) सच ?—क्या वत्स भीमसेन लड़ रहे हैं ?

पांचालक—हाँ, सचमुच। क्या आपसे झूठ भी कह सकता हूँ ?

युधि०—

त्रस्त हेतु-बिन धीर का, हृदय विवेक-विहीन।
भीम-बाहु-बल-विज्ञ भी, रण में संशय-लीन ॥ ४ ॥

(द्रौपदी की ओर देखकर)

गुरु-बन्धु-गण के देखते अथवा नृपों के सामने,
परिभव हमारा था हुआ जो नृप-सभा में शोभने ?
दोनों लगायेंगे हमें ये पार उससे हे प्रिये ?
यह आज पाण्डव-नाश, दुर्योधन-निधन अथवा प्रिये ॥
॥ ५ ॥

शपथ-भंग में भीरु उस, पाण्डव से अति वीर,
१वध्य केश तव २केश-हर, उसका प्राण-समीर ॥६॥

पांचालक! अच्छा यह तो बताओ—वह दुष्ट मिला कैसे ? किस स्थान पर ? और अब क्या होरहा है ?

द्रौपदी—भद्र ? कहो, कहो।

पांचालक—महाराज तथा रानी जी ? सुनें। जबकि, महाराज ने, युद्ध में मद्राधिपति शल्य को मार दिया; सहदेव ने कंधार के राज-कुल में पतङ्ग-तुल्य शकुनि को तलवार के घाट उतार दिया; सारे सेनापति जब रण-चण्डी को भेंट चढ़ गये; मरने से बचे हुए शत्रु-दल के वीर, चिल्लाते हुए, जब, रण छोड़कर भाग गये; वैरियों की सेना के हार जाने पर, जबकि, आपकी सेनाओं ने, धृष्टद्युम्न जैसे सेना नायक को पा—उद्धत हो अद्भुत विक्रम दिखाकर—शत्रु-दल को चारों ओर से घेर लिया; और कृप, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा—ये तीनों—छिप गये, तो यह जानकर

---

१ इस शब्द के दो अर्थ हैं। वध्य = बाँधे जायँगे, एक अर्थ। और मारा जायगा—यह दूसरा अर्थ। २ बालों को खींचनेवाला।

कि कुमार भीमसेन की शपथ आज ही पूरी होनी चाहिये—न जाने, वह पापी, नीच कौरव, कहाँ विलीन होगया।

युधि०—तब फिर!

द्रौपदी—भैय्या? आगे कहो।

पांचालक—महाराज और रानी जी ज़रा ध्यान दें। उसके बाद भगवान् वासुदेव के साथ भीमसेन और अर्जुन दोनों ने, एक रथ पर सवार हो, समन्त-पंचक के चारों ओर, चक्कर लगाना शुरू किया, और वह नहीं मिला। बाद में, जब मुझ-जैसे तुच्छ सेवक भाग्य को कोसने लगे, कुमार अर्जुन ने लंबा और गरम साँस खींचा, कुमार भीमसेन ने, पावस-निशाओं में चमचमानेवाली बिजलियों के समान पिङ्गल कटाक्षों से, अपनी गदा को जगमगा दिया और जब भगवान् वासुदेव, दैव की स्वेच्छा-चारिता की निन्दा करने लगे—तो कोई, कुमार भीमसेन की परिचित पुरुष, जिसके चरण और वक्ष, ताज़े-मरे हरिणों के खून में रँगे हुए थे, मांस भार को एक ओर रख, नज़दीक आया, और बीच २ में, साँस से अक्षरों को निगलता हुआ—इसलिये अध-सुने शब्दों से, जिसके बाक़ी पदों का अनुमान किया जाता था—यह वाणी बोला—"इस महासरोवर के तीर पर, दो पैरों के निशान ठीक ठीक उतरे हुए हैं—उनमें से एक ज़मीन पर है, किन्तु दूसरा नहीं। आगे

कुमार खुद सोच सकते हैं"—यह सुन कर, हम सब, उसी पुरुष को आगे कर चल दिये, और उस सरोवर के किनारे पर पहुँच, भगवान् वासुदेव ने, उस पैर के निशान का दुर्योधन का जान, यह कहा—'हे वीर! वृकोदर! दुर्योधन जल-स्तंभिनी-विद्या को जानता है। इसलिये वह अवश्य ही इस सरोवर में होगा'। भगवान् कृष्ण के ये वचन सुन, कुमार वृकोदर ने तालाब के पानी को इस तरह मथ डाला कि वह दिङ्-निकुंजों को भी पार कर बाहर निकल गया, सारे जलचर विहंगम आकाश में ऊपर उड़ गये, और नक्र, और घड़ियाल मारे भय के विचलित होगये, और वे भयंकर गर्जना करते हुए बोले—'अरे! व्यर्थ ही अपने झूठे पराक्रम का ढिंढोरा पीटने वाले, अभिमान के पुतले? और द्रौपदी के चीर और बालों को खींचनेवाले, महापातकी?

निज-जन्म कहता चन्द्र-कुल में, तू गदा भी धारता,
अरि वा १दुशासन-नव-रुधिर-मधु-मत्त मुझको मानता।
दर्पान्ध ने चाहा अहो मधु-वैरि हरि को बाँधना,
क्यों भीरु? भाया छोड़ रण को पङ्क में यों लेटना॥६॥

और भी, अरे! मदान्ध!

यह द्रौपदी का क्रोध नर-पशु? शान्त प्रायः हो चुका,
पति-नाश से २कुरु-सुन्दरी-गण केश अपना खोचुका।

१ दुःशासन के नये खून-रूपी शराब से उन्मन्त। २ कौरवों की स्त्रियाँ।

लख अनुज-दुशासन-उरस्थल-रक्त के भी पान को,
क्या भीम का तूने बिगाड़ा जो तजा अभिमान को ॥८॥

द्रौपदी—नाथ ? मेरा क्रोध शान्त होगया, यदि फिर भी उनके सुलभ दर्शन मिलें ?

युधि०—कृष्णा ? यह समय, अमंगल-वचन बोलने का नहीं है। भद्र ? तब, फिर !

पांचालक—इसके बाद, कुमार भीमसेन ने--यों कह, आवेश में आ, गदा और परिघ हाथ में लेकर, कूलंकष उस महासरोवर को इस तरह मथ डाला कि कमलिनियों के झुण्ड के झुण्ड नष्ट होगये, घड़ियाल आघात पाकर बेहोश होगये, मछलियाँ और जलचर पक्षि-गण इधर उधर घूमने लगें और उन्मथित पानी, अति भीषण नाद करने लगा।

युधि०—भद्र ? क्या, फिर भी ऊपर नहीं आया ?

पांचालक—राजन् !

कालकूट विष जैसे उगता [1]क्षीर-महोदधि-मन्थन से,
खूब हिलाया भीमने मन्दर-तुल्य सरोवर भुज-युग से।
क्रुद्ध उड़ाता क्रोधानलके विष-कण ऊपर नभ-तल में,
आया ऊपर नीच सुयोधन, वास छोड़कर सर-तलमें ॥९॥

---

१ क्षीर-सागर का मथना।

युधिष्ठर—शाबाश! सच्चे, क्षत्रिय? शाबाश!!

द्रौपदी—युद्ध के लिये तैयार हुआ या नहीं?

पांचालक—तब उसने, तालाब की तलैटी से ऊपर निकल, भयानक गदा को अपने दोनों हाथों की वन्दन-माला बना कर यह कहा—'अरे रे! वायु-पुत्र? क्या तू यह समझता है कि दुर्योधन भय से छिप गया था?—मूर्ख? बिना पाण्डवों के मारे, सबके सामने, प्रकट-रूप से विश्राम करने में, मुझे लज्जा आती थी—इसीलिये मैंने पाताल को अपनी विश्राम भूमि बनाया'—उसके यह कह चुकने के बाद, वासुदेव और अर्जुन दोनों ने, उन्हें जल में लड़ने से रोका और स्थल पर उतारा। और बैठे हुए कौरवेश्वर ने, क्षिति-तल पर गदा को फेंक, ज्योंही रण-क्षेत्र की ओर नजर डाली, तो देखता क्या है कि हजारों रथ, वहाँ, टूटे पड़े हैं, मृत कौरवों तथा हजारों हाथी, घोड़े और मनुष्यों के शवों पर, गृध्र, कङ्क और गीदड़ टूटे पड़ रहे हैं; हमारे वीर-गण सिंह-नाद कर रहे हैं तथा उसके मित्रों और कौरवों में से कोई भी बाक़ी नहीं बचा। यह देख कर उसने बड़ा लम्बा और गरम सांस खींचा। तब वृकोदर बोले—'अरे कौरवों के अधिराज! बन्धु-नाश देखकर दुखी होना व्यर्थ है।' पाण्डव समर्थ हैं और मैं अकेला हूँ—यह सोच कर अधिक खिन्न मत हो।

पांचों में तू मानता, जिसे [1]सु-योधन नाम ?
पहिन कवच कर अस्त्र ले, कर उससे संग्राम ॥१०॥

यह सुन कर दोना कुमारों पर, डाह-भरी दृष्टि डाल, सुयोधन बोला—

कर्ण-दुशासन-नाश से, दोनों एक समान ।
अप्रिय भी प्रिय धीर ! तू, रण में निज को मान ॥११॥

इसके बाद वे दोनों उठ खड़े हुए, और क्रोध के कारण एक दूसरे को, निन्दा-सूचक कटु-वचन कहते हुए, घोर संग्राम करने लगे। उस समय, उन दोनों के भुज-दण्ड, अद्भुत-रीति से गदा घुमाने के कारण, देदीप्यमान हो रहे थे। वे दोनों ही मण्डलाकार घूमने लगे। सुदर्शन-धारी भगवान् ने, मुझे आपके पास भेजा है और उन्होंने यह कहा है कि, भीम की प्रतिज्ञा आज ही पूर्ण होनी चाहिये और कुरु राज छिप गया है—यह जानकर हमें बड़ा खेद हुआ। किन्तु अब भीम ने सुयोधन को पा लिया है—इसलिये आप मेदिनी को, निष्कंटक हुई समझिये। आप हमेशा अभ्युदय के योग्य कृत्य करते रहें ! संदेह करना निष्फल है।

कांचन-कलश हों तीर्थ-जल से पूर्ण तव अभिषेक में,
हो बद्ध कृष्णा का खुला कच-पाश अति चिरकाल में।

१—सुख से लड़ने के क़ाबिल ।

शित-परशु ले रण में खड़े उस क्षत्र-द्रुम-हर राम में,
संशय नहीं क्रोधान्ध वा उस भीम अति-बल-धाम में ॥१२॥

द्रौपदी—(आँखों में आँसू भर कर) भगवान् त्रिलोकी-नाथ का कहना, कैसे अन्यथा हो सकेगा ?

पांचालक—यह केवल आशीर्वाद ही नहीं, किन्तु दैत्य-रिपु का आदेश भी है।

युधि०—कौन ऐसा पागल है !—जो भगवान् के संदेश में कल्प-विकल्प करता है ? कौन ?—कौन है यहाँ ?

(आकर)

कंचुकी—महाराज ? हुक्म करिये।

युधि०—क्यों कि भगवान् देवकी-नन्दन का हम में अति आदर है—इसलिये वत्स भीमसेन के, विजय-रूप कल्याण के सूचक, मङ्गलोचित कृत्य प्रारम्भ किये जाँय !

कंचुकी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (उत्साह से घूमकर) भाई, प्रधान अनुष्ठान-कर्त्ताओ ! रनवास में रहनेवालो ! और द्वारपालो ! —यह महाराज युधिष्ठिर, बाहु-बल से, कौरवों से किये गये-परिभव-समुद्र के जो पार उतर चुके हैं, सुयोधन के सौ भाईयों को, जिन्होंने, नष्ट भ्रष्ट कर दिया है, दुःशासन के वक्षस्थल को दलने वाले नृसिंह और दुर्योधन के जङ्घा-रूपी-स्तम्भ को तोड़ने का जिन्हों ने निश्चय कर लिया है—उन बलवान पवन-तनय भीमसेन

के-माङ्गलिक कृत्य को, स्नेह-युक्त मन से करने के लिये, समाज्ञापित करते हैं। (आकाश में) क्या यह कहते हो? कि, सब और धूम-धाम से होते हुए मङ्गल के काम-काज को-क्या नहीं देखते हो? शाबाश! बेटो? शाबाश!! बिना कहे ही हित करना स्वामी-भक्ति को प्रकट करता है।

युधि०—आर्य! जयंधर!

कंचुकी—महाराज? आज्ञा करियेगा।

युधि०—शुभ-सन्देश लाने-वाले पांचालक को, इनाम देकर संतुष्ट करो।

कंचुकी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (पांचालक के साथ प्रस्थान)

द्रौपदी—महाराज? नाथ ने किसलिये यह कह दिया? कि—हम पांचों में से जिस के साथ चाहो लड़ सकते हो। यदि माद्री-पुत्रों में से वह किसी को लड़ाई के लिये चुन ले, तो बड़ा अनर्थ हो!

युधि०—कृष्णा! जरासंध-शत्रु—भीम—का यह इरादा है कि "कहीं बन्धु-विहीन असहाय दुर्योधन, ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं में से सारे मित्र, बन्धु, वीर, छोटे भाई और क्षत्रियों के मर जाने पर, तथा केवल कृप, कृतवर्मा, और अश्वत्थामा के शेष बचने के बाद, अपने अभिमान को छोड़—शस्त्र त्याग बैठे! तपोवन का मार्ग ग्रहण करले!—अथवा अपने पिता के मुँह से, संधि की

प्रार्थना करे! यदि ऐसा हुआ, तो संपूर्ण शत्रुओं पर विजय तथा महाप्रतिज्ञा की पूर्ति, बहुत दूर की बात हो जाय"! सुयोधन, पांचों पाण्डवों में एक से भी, कदापि युद्ध स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिये, मेरे विचार में, भीमसेन के साथ ही उसका गदा—युद्ध होगा। प्यारी! सच्ची राजपूत-नन्दनी देख,

नहि एक भी रण में करे जो भीम-गद का सामना,
है हस्त-लाघव राम-सम कुरु-राज में यह मानना।
१कुरु-कुल-कमल-वन-नाग मेरे वत्स का कल्याण हो,
शङ्का नहीं कुरुराज से जो अन्य का संग्राम हो॥१२॥

(नेपथ्य में)

अरे! मैं प्यासा हूँ!! कोई जल और छाया-दान करे, तो बड़ा उपकार होगा।

युधि०—(सुनकर) कौन?—कौन है यहाँ?

(आकर)

कंचुकी—आज्ञा करियेगा महाराज?

युधि०—देखो, यह क्या है?

कंचुकी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे। (जाकर और फिर आकर) महाराज? कोई भूखा अतिथि आया है।

---

१ कुरु-वंश-रूपी कमल के वन के लिये हाथी के समान।

युधि०—जल्दी भेजो ?

कंचुकी—महाराज को आज्ञा सिर-माथे। (प्रस्थान)

(मुनि-वेष-धारी चार्वाक नाम के राक्षस का प्रवेश)

राक्षस—(मन-ही-मन) यह मैं चार्वाक नाम का राक्षस हूँ। सुयोधन का मित्र हूँ। पाण्डवों को धोखा देने के लिये घूमता हूँ। (प्रकट) मैं प्यासा हूँ। कोई मुझे जल और छाया-दान करे तो बड़ा उपकार हो! (राजा के पास जाना)

(सब का उठ खड़े होना)

युधि०—मुनि जी ? मैं अभिवादन करता हूँ।

राक्षस—यह शिष्टाचार का समय नहीं है। मुझे, जल-दान से तृप्त करियेगा।

युधि०—मुनि जी ? यह आसन है। विराजियेगा।

राक्षस—(बैठकर) तो आप भी आसन ग्रहण करियेगा।

युधि०—(बैठकर) कौन है यहाँ ?—पानी ले आओ।

(झज्झर हाथ में लिये हुए प्रवेश)

कंचुकी—(पास जाकर) महाराज ? शीतल और सुरभि सलिल से भरा हुआ यह झज्झर है, और यह पानी का पात्र है।

युधि०—मुनि जी ? अपनी प्यास बुझाइयेगा।

राक्षस—(पैर धोकर आचमन करता हुआ (सोचकर) आप क्षत्रिय मालूम पड़ते हैं !

युधि०—आपका ख्याल ठीक है।

राक्षस—क्योंकि आप क्षत्रिय हैं और क्षत्रियों के बन्धु-बान्धव प्रायः युद्ध में मरते रहते हैं—इसलिये आप से जल-दान लेना उचित नहीं। अच्छा! इस छाया ही से तथा सरस्वती की शीतल-तरङ्ग-माला से मिली इस सुखद समीर से अपनी थकावट दूर करूँगा।

द्रौपदी—बुद्धिमती? महर्षि को इस ताल-वृन्त से हवा करो।

(दासी का हवा करना)

राक्षस—पूज्ये? हम में,यह शिष्टाचार उचित नहीं।

युधि०—मुनि जी! कहिये आपको ऐसी थकावट क्यों हुई?

राक्षस—मुनि-जन-सुलभ कौतूहल से, पूज्य श्रेष्ठ क्षत्रियों के द्वन्द्-युद्ध को देखने के लिये मैं समन्त-पंचक (कुरुक्षेत्र) में घूमता है। आज मैं, उग्र शरद्-ऋतु की धूप के कारण, अर्जुन तथा सुयोधन के गदा-युद्ध को बीच ही में छोड़, चला आया हूँ। (सब शोक प्रकट करते हैं)

कंचुकी—मुनि जी? यह ठीक नहीं। भीमसेन और सुयोधन का,—यह कहो।

राक्षस—आः! बिना बात के जाने ही मुझे झूठा बताते हो?

युधि०—महर्षि जी! कहिये, कहिये।

राक्षस—क्षण-भर विश्राम करके, मैं आप से सब कहे देता हूँ, किन्तु इस बूढे से नहीं।

युधि०—कहिये, अर्जुन और सुयोधन का क्या हुआ?

राक्षस—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अर्जुन और सुयोधन का गदा-युद्ध छिड़ गया।

युधि०—न कि भीमसेन और सुयोधन का ?

राक्षस—वह हो चुका।

(युधिष्ठिर और द्रौपदी दोनों अचेत हो जाते हैं)

कंचुकी—(जल छिड़क कर) महाराज और रानी जी, धीरज धरें।

दासी—धीरज धरिये, धीरज धरिये, रानी जी ?

(दोनों का सचेत होना)

युधि०—क्या कहते हो मुनि जी ? भीमसेन और सुयोधन का गदा-युद्ध हो चुका ?

द्रौपदी—भगवन् ? कहियेगा, कहियेगा। क्या हो चुका ?

राक्षस—कंचुकी ? ये दोनों—हैं कौन ?

कंचुकी—यह महाराज युधिष्ठिर हैं और यह पांचाली।

राक्षस—आः ! क्रूर मैंने, दारुण बात प्रारम्भ कर दी !

द्रौपदी—हाय ! नाथ ! भीमसेन ? (अचेत हो जाती है)

कंचुकी—ठीक नहीं कहा।

दासी—धीरज धरिये, धीरज धरिये रानी जी ?

युधि०—(आँखों में आँसू भर कर) ब्रह्मन् ?

तप्त-हृदय हूँ अति दुखी, सुन तव वाणी भ्रान्त।
सुखो प्राण तज मैं बनूँ, जान सत्य वृत्तान्त ॥ १४ ॥

राधास—(आनन्द से मन-ही-मन) मैं इसीके लिये कोशिश कर रहा हूँ। (प्रकट) यदि कहना आवश्यक ही है तो संक्षेप से कहता हूँ। बन्धु-नाश को विस्तार से कहना उचित नहीं।

युधि०—आँसू गिराते हुए।

हे ब्रह्म ! कहदो सर्वथा जो वृत्त हो तुम जानते,
संक्षेप से विस्तार से अथवा हृदय में धारते।
मुनिराज ? सुनना चाहता निज वत्स के वृत्तान्त को,
चाहे अशुभ हो शुभ तथा यह समय देता आप को ॥१५॥

राधास—सुनिये,

कुरुराज में अरु भीम में जब था गदा-युद्ध हो रहा,
बलराम आये शीघ्र संगर[1] सामने होता रहा।

द्रौपदी—(यकायक उठकर) तब, फिर !

राधास—(मन-ही-मन) इनको इस चेतना को कैसे हरूँ ?

(प्रकट)

प्रिय-शिष्य ने एकान्त में कर से इशारा कर दिया,
कुरुनाथ ने जिससे [2]दुशासन-शत्रु का वध है किया ॥१६॥

युधि०—हाय ! वत्स ! भीमसेन ! (मूर्च्छित हो जाता है)

---

[1]युद्ध। [2]भीम।

द्रौपदी—हा ! नाथ ! भीमसेन ! हाय ! मुझ अबला के अपमान का बदला लेने के लिये अपने जीवन को बलिदान करने वाले ? हाय ! जटासुर, बक, हिडिम्ब, किर्मीर, कीचक और जरासंध का विध्वंस करने वाले ? हा ! सौगन्धिक—कमल—को लाने वाले चाटुकार ? मेरी बात का उत्तर दो (अचेत हो जाती है)

कञ्चुकी—(आँखों में आँसू भरकर) हा ! कुमार भीमसेन ! हा ! धृतराष्ट्र—कुल-कमलिनी के लिये ओस-बिन्दु ? (घबरा कर) धीरज धरियेगा, महाराज ? भद्रे ! रानीजी को धीरज बँधाओ।

राक्षस—(मन-ही-मन) प्राण छुड़वाने के लिये धीरज बँधाता है। (प्रकट) युधिष्ठिर ! एक क्षण के लिये धीरज धरो ! अभी और कुछ कहना शेष है।

युधि०—(दिल थाम कर) महर्षि जी ? और क्या कहना शेष है ?

द्रौपदी—(सचेत होकर) भगवन् ! कहिये, क्या कहना बाक़ी है !

कञ्चुकी—कहिये, कहिये।

राक्षस—उसके अनन्तर, उस सच्चे बहादुर के, वीर योग्य गति पा लेने पर, तुम्हारे तीसरे अनुज अर्जुन ने, भाई के मरने के दुख से उत्पन्न आँसुओं को पोंछ, नव-रुधिर की बूँदों से सनी गदा को, अपने भाई के हाथ में से खींच लिया। तब 'इधर आ, इधर आ'—इस प्रकार

गदा के शब्द में अपनी वाणी को मिला कौरवराज ने, उसे युद्ध के लिये ललकारा। और वह संधि-इच्छुक श्री कृष्ण के मना करने पर भी, कौरवराज से लड़ने लगा। गदा-युद्ध से अनभिज्ञ उसकी, दुर्योधन के गदा-प्रहार से मृत्यु की संभावना करते हुए बलराम, अर्जुन-प्रेमी श्री कृष्ण को, बड़े यत्न से अपने रथ पर बैठा कर द्वारका ले गये।

युधि०—शाबाश! भाई, अर्जुन! शाबाश!! गाण्डीव छोड़ते ही तुम, भीमसेन के पीछे चले गये। मैं फिर किस प्रकार प्राणों को त्याग खुशी मनाऊँगा?

द्रौपदी—हा! नाथ! भीमसेन! तुम्हें यह उचित नहीं कि गदा-युद्ध में अनिपुण—अपने छोटे भाई को, भयंकर शत्रु के सामने जाते हुए देख भी चुप रहो। (अचेत हो जाती है)

राक्षस—और उसके बाद में—

युधि०—अच्छा मुनि जी? इससे आगे सुनना निरर्थक है! हा! तात! भीमसेन? हा! वनवास-दुःख के साथी? हाय! मेरी मृत्यु से डरने वाले? हाय! लाख-गृह के दुःख-सागर से पार उतारने वाले? हा! किर्मीर, हिडिम्ब और जरा-संध को जीतने वाले मल्ल? हाय! कीचक और सुयोधन के छोटे भाइयों को कमलिनी के समान खण्ड २ करने वाले गजराज?

निर्लज्ज द्यूत-व्यसनी मेरी दासता प्यारे तूने,
विनत हज़ारों मत्त गजों के बलवाले ! मानी तूने।
बतला दो जो आज चले तुम, क्या मैंने अपराध किया ?
छोड़ अनाथ अबान्धव मुझको शीघ्र, कहाँ वह प्रेम किया ?
॥ १७ ॥

द्रौपदी—(सचेत होकर) महाराज यह क्या है ?

युधि०—कृष्ण ? और क्या है ?

बकासुर, हिडिम्ब, किर्मीरादि, राक्षस-गण कीचक मारा,
अभिमानी जरासंध को जिसने खण्ड-खण्ड कर डाला।
[1]गदा-अर्गल-तुल्य-विशोभित भुज-युग था जिसने धारा,
मरा अनुज हमारा, अर्जुन-गुरु, अथवा तेरा प्यारा॥१८॥

द्रौपदी—(फिर अचेत हो जाती है) नाथ ! भीमसेन ! तुम्हें तो मेरे बाल बाँधने हैं ! वीर क्षत्रिय के लिये यह ठीक नहीं कि अपनी प्रतिज्ञा को भूल बैठे। इसलिये, नाथ ! मेरी इन्तज़ार करो। मैं शीघ्र ही आती हूँ।

युधि०—(आकाश में) माता ! पृथा ! क्या अपने पुत्र का यह शिष्टाचार सुन लिया ? मुझ अनाथ को बिलखता छोड़ कहीं चला गया। प्यारे ! जरासंध शत्रु ? थोड़ी उम्र वाले तुम में, लोक ने, क्या प्रकृति विरुद्ध बात देख ली ? अथवा मैंने ही बहुत देख ली—

१—गदा तथा अर्गल (मूसले) के समान शोभित होने वाला।

देकर मुझको जीत धरा यह सारी तात ! लजाते हो,
दाव लगाने पर भी तब तुम क्रुद्ध न प्रेम जताते हो।
मेरे लिये विराट-भवन में जो तुम प्यारे सूद बने,
ये सब नश्वर तेरे सहसा देखे चिन्ह सभी हमने ॥१९॥

मुनि जी ? क्या कहते हो ? ('कुरुराज में अरु भीम में, (६। ।१६) इत्यादि पढ़ता है)।

राक्षस—यह ठीक है।

युधि०—धिक्कार है हमारे भाग्य को ! भगवन् ! कामपाल ! कृष्णाग्रज ! सुभद्रा के भाई ?

सम्बन्ध को माना नहीं, जाना न क्षत्रिय-धर्म को,
समझा न अर्जुन से अनुज की मित्रता के मर्म को।
इस शिष्य-युग में एक सा ही स्नेह होना चाहिये,
निज बन्धुओं में क्रूरता क्या तात ? ऐसी चाहिये ॥२०॥

(द्रौपदी के समीप जाकर) प्यारी पाँचाली ? उठो, हम समान-दुख-वाले बनते हैं। अचेत पड़ी, क्यों इस प्रकार मुझे ठग रही हो ?

द्रौपदी—(सचेत होकर) नाथ ! दुर्योधन के रक्त से रंगे हाथ से, दुःशासन से खींचे गये मेरे (इन) बालों को बाँधो। हञ्जे ! बुद्धिमती ! तुम्हारे भी सामने, नाथ ने क़सम खाई थी। (कञ्चुकी के पास जाकर) आर्य ! देव देवकीनन्दन ने सन्देशा भेजा है कि, बालों को बाँधना शुरू करो। तो

खिले फूलों की मालाएँ तो ले आओ। लड़कियो! मेरे बाल बनाओ। हम भगवान् विश्वपति का आदेश पालन करती हैं, क्योंकि वे झूठा सन्देश नहीं भेजा करते। ओ! हो! मेरे दर्द-भरे दिल से न जाने क्या २ निकल गया! अभी स्वर्ग को गये आर्य-पुत्र का अनुसरण करूँगी। (युधिष्ठिर के पास जाकर) महाराज? मेरी चिता जला दो! तुम भी क्षत्रिय-धर्म का पालन करते हुए नाथ के प्राणान्तक (दुर्योधन) से लड़ो।

युधि०—पांचाली ठीक कह रही है। कञ्चुकी! इस तपस्विनी को चिता सुलगादो, जिससे इसकी पोड़ा कम हो जाय। मेरे भी सज्जित धनुष को ले आओ। अथवा धनुष से क्या?

प्रिय भीम के ही देह से गिरते-रुधिर-रँग से रँगी,
ले हाथ में—तज चाप जो रण में गदा थी जगमगी।
उस भ्रातृ-वत्सल पार्थ ने जो कृत्य रण में है किया,
है इष्ट मुझको भी वही करना, न कुछ जय की क्रिया॥२१

राक्षस—राजन्! यदि तुम्हारा दिल, शत्रु पर विजय प्राप्त करना नहीं चाहता, तो जहाँ कहीं जाकर प्राण-विसर्जन करदो। वहाँ जाने से क्या लाभ?

कञ्चुकी—मुनि जी? धिक्कार है आपको। आपका दिल राक्षसों जैसा है।

राक्षस—(ध्यानपूर्वक मन-ही-मन) क्या इसने मुझे पहिचान लिया? (प्रकट) कञ्चुकी! अर्जुन और सुयोधन का

गदा-युद्ध शुरू हुआ। और उन दोनों के भुज-बल को मैं जानता हूँ। किन्तु, दुखी राजर्षि को दूसरा अनिष्ट नहीं सुनाना चाहता। इसलिये ऐसा कह रहा हूँ।

युधि०—(आँसू बहाता हुआ) धन्य! महर्षि जी? धन्य!! तुम्हारा कथन स्नेह-युक्त है।

कंचुकी—महाराज? देव-तुल्य होकर भी आप, साधारण पुरुष की भाँति, क्षात्र-धर्म से क्यों विमुख हो रहे हो?

युधि०—आर्य! जयंधर!

भुज-दण्ड अर्गल-पीन जिनका सोहता था सर्वथा,
विक्रम धनेश सुरेश के संमुख दिखाया था तथा।
क्या भीम अर्जुन को सकूँगा भू-लुठित होते हुए,
मैं देख वा उनके निधन से शत्रु को हँसते हुए ॥ २२ ॥

प्यारी, पांचाल-राज-पुत्री? मेरी दुर्नीति से इस शोचनीय दशा को प्राप्त होने-वाली? दोनों एक साथ ही, प्रज्वलित चिता में कूद बन्धु-जन का सम्मान करते हैं।

द्रौपदी—आर्य! काष्ठ-सञ्चय करलो। क्यों?—महाराज की बात कोई भी नहीं मानता? हा, नाथ! भीमसेन! आज तुम्हारे बिना, अनुचर भी, महाराज का तिरस्कार कर रहे हैं।

राक्षस—भरत-कुल की ललनाओं के लिये पति के पीछे मर जाना सर्वथा उचित है।

युधि०—मुनिजी? हमारी बात कोई नहीं सुनता। आप ही ईंधन देने की कृपा करियेगा।

राक्षस—यह बात मुनि-जनों के आचार के विरुद्ध है। (मन-ही-मन) खुशी की बात है मेरी इच्छा पूरी हो गई। जल्दी ही अदृश्य होकर चिता सुलगाता हूँ। (प्रकट) राजन् ? हम यहाँ नहीं ठहर सकते। (प्रस्थान)

युधि०—कृष्णा ? हमारी बात कोई भी नहीं मानता। अच्छा मैं स्वयं ही ईंधन इकट्ठा करता हूँ।

द्रौपदी—जल्दी करिये, जल्दी करिये—महाराज ?

(नेपथ्य में कोलाहल का होना)

द्रौपदी—(भय से सुनकर) महाराज ! किसी बलाभिमानी की शङ्ख ध्वनि सुन पड़ती है। मालूम होता है कि आप, कुछ और भी अनिष्ट सुनना चाहते हैं—यही कारण है कि आप देर कर रहे हैं।

युधि०—नहीं, देर नहीं कर रहा। उठो।

(सब का चलना)

युधि०—प्यारी, पाँचाली ? माता जी। और सौतों के लिये कुछ संदेश देकर, परिजन को बिदा करो।

द्रौपदी—महाराज ! माता जी को यह संदेश देना है कि, "बक हिडिम्ब, किर्मीर, जटासुर और जरासंध आदि को मारने वाला, वह भी महाबली, आपका मँझला पुत्र, मुझ अभागिनी में पक्षपात होनेके कारण परलोक सिधार गया।

युधि०—बुद्धिमती ! हमारा यह संदेश माता जी से कह देना।

स-पुत्र जतु-गृह-अग्नि से, बल से जिसने धन्य !
अम्ब ! बचाया वत्स का, कौन कहै वध अन्य ॥२३॥

आर्य ! जयंधर ! तुम सहदेव के पास जाना । और पाण्डवों में बृहस्पति के समान, सब से छोटे और कुरु-कुल-रूपी तालाब को सुखानेवाले वाडवानल उस से कहना कि 'युधिष्ठिर परलोक-यात्रा कर रहा है, और तुम उसके छोटे भाई हो, और अब तक हमेशा उसके अनुकूल रहे हो, सदा आशीर्वाद के पात्र हो और सुख-दुःख में एक रहनेवाले हो । वह गाढालिङ्गन-पूर्वक तथा सिर सूँघ कर तुमसे यह प्रार्थना करता है :-

छोटे हो अति उम्र में, शास्त्र-ज्ञान समान ।
सहज-कृपा-युत-मत बड़े, हो विद्वान महान ॥
शीश कराञ्जलि बांध, करता हूँ मैं प्रार्थना ।
तोड़ प्रेम का बांध, पितरों को जल-दान कर॥२४॥

और नित्य अभिमानी, विपत्ति पड़ने पर भी विचलित न-होने-वाले नकुल को भी, जिसको कि बाल्य-अवस्था में, मैंने पाला-पोसा है, मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिये । इसलिये नकुल से कह देना कि हमारे मार्ग का अनुसरण न करे ! और यह भी कह देना :—

हे तात ! हमको भूलकर तुम वेद के विज्ञान से,
मृत पाण्डु को देने जलांजलि युत [1]नयन-जल-जाल से ।

---

[1]आँसू ।

तुम वास करना रिपु-भवन में, यादवों के गेह में,
अथवा विपिन में भ्रातृ-युत १अभ्यास करना देह में॥२५॥

जाओ जयंधर ! तुम्हें हमारे शरीर छूने की शपथ ! यदि तुम ठीक समय पर, इस आवश्यक संदेश को न पहुँचाओ।

द्रौपदी—हला ! बुद्धिमती ? प्रिय-सखी सुभद्रा को मेरी ओर से कहना कि, "आज प्यारी उत्तरा को गर्भ धारण किये हुए चौथा महीना है। इसलिये इस कुलांकुर की, सावधानी से रक्षा करो। कदाचित् सुरलोक-वासी श्वश्रू-कुल (अर्जुनादि) को और हम को भी, जल-बिन्दु-दान करने वाला होगा"।

युधि०—(आँखों में आँसू भरकर) हा ! कष्ट !! महाकष्ट !!!

शाखाओं से अति-निबिड़, ढके सकल भू-कूल।
दिग्-भूषण, पृथु-स्कन्ध जो, उचित-बंध, चहुँ-मूल॥
तरु-वर जला—विधान ! उसके इस लघु अंग में।
आशा यह सुमहान, २छायार्थी-जन बाँधता॥२६

द्रौपदी ? अब मैं अपने निश्चय को पूरा करता हूँ। (कंचुकी की ओर ओर देखकर) आर्य ! जयंधर ! हमारे शरीर छूने की सौगन्द से भी तुम नहीं जाते !

---

१ प्रेम, देह में अभ्यास होने से मतलब है—देह की रक्षा करना।
२—द्रौपदी।

कञ्चुकी—(चीख मारकर) हा ! देव ! पाण्डु ! आपके पुत्र, अजात शत्रु, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव को ऐसा भीषण परिणाम भुगतना पड़ा। हा ! देवी ! कुन्ती ! भोजराज के भवन की अधिदेवता ?

तव मात ? भ्राता-पुत्र ने, हरि-ज्येष्ठ, अर्जुन-श्याल ने,
२कौरव-नलिन-वन के दलन करिराज३ के गुरुराज ने।
उन्मत्त ने, मधु-मत्त ने, हल-धारि ने अथवा अहो।
निःशेष सुत-वन कर दिया भू शान्त थी जिससे अहो ॥२७

(रोते हुए प्रस्थान)

युधि०—जयंधर ! जयंधर !!

(प्रवेश)

कञ्चुकी—महाराज ? हुक्म करियेगा।

युधि०—'कहना है'—इसलिये कहता हूँ। पर हमारे इतने भाग्य कहाँ ? यदि कदाचित्, वत्स अर्जुन जीत जाय, तो हमारे ये वचन उससे कह देना—

यह सत्य है 'बलराम कारण वत्स की मम मृत्यु में',
सहचर तुम्हारे कृष्ण का फिर भी सहोदर तत्त्व में।

२—कौरव-रूपी कमल के वन को दलन=नष्ट करनेवाले। ३–हाथी अर्थात् भीमसेन।

इससे कुपित होना नहीं, यदि धारते तुम प्राण को ,
जाना विपिन में,मत भजो कटु क्षत्रियोचित मार्ग को ।।२२

कञ्चुकी—महाराज की आज्ञा सिर-माथे । (प्रस्थान)

युधि०—(अग्नि की ओर देखकर हर्ष से) इस भगवान् हुताशन को तो देखो !—कैसा उद्दीप्त हो रहा है ! मानो धधकती ज्वालाओं के हाथों से, हम सरीखे दुखी मानवों को, बुला रहा हो ! मैं अभी इसमें जलकर प्राण-विसर्जन करता हूँ ।

द्रौपदी—महाराज ! मेरी इस अन्तिम प्रार्थना को अङ्गीकार कर, मुझे अनुगृहीत कीजियेगा । पहले मैं अग्नि में प्रवेश करती हूँ ।

युधि०—दोनों साथ ही साथ, अग्नि में प्रवेश करते हैं ।

दासी—हा ! भगवन् ! लोक-पालो ! बचाइयेगा, बचाइयेगा । ये, राजसूय-यज्ञ में सर्वस्व स्वाहा कर अग्नि को तृप्त करने-वाले तथा खाण्डव-वन को जलानेवाले किरीटी—अर्जुन—के बड़े भाई, चन्द्र-वंशी राजर्षि, प्रातः स्मरणीय महाराज युधिष्ठिर हैं । और यह, पांचालराज—द्रुपद की बेटी, देवी द्रौपदी हैं । दोनों ही इस दारुण अग्नि में अपने देह को जला रहे हैं । इसलिये बचाइयेगा, सज्जनो ! बचाइयेगा । क्यों ?—कोई भी नहीं बचाता ! (दोनों के आगे गिर कर) न जाने रानी जी और महाराज, दोनों ने क्या सोचा है ?

युधि०—अरी बुद्धिमती ? जो स्नेहमय प्रिय भाई के विरह में

करना चाहिये—वह ! उठो, उठो, भद्रे ? जल ले आओ।

(दासी का पानी लाना)

युधि०—(पैर धोकर और आचमन करके) यह जलांजलि, गङ्गा-पुत्र भीष्म के लिये, प्रपितामह शान्तनु के लिये और पितामह विचित्रवीर्य के लिये है। (आँसू बहाता हुआ) अब पिताजी की बारी है। यह, स्वर्गीय तथा प्रातःस्मरणीय पिता पाण्डु के लिये है।

दुर्लभ होगा आज से, हमसे यह जल-दान।
मात-सहित हे तात!तुम, आज करो जल-पान ॥२९॥

१उत्पल-लोचन नाथ !, यह जल दोनों के लिये।
आता पीने साथ , प्यासे भी यक क्षण सहो ॥३०

अथवा, मैं मरकर भी, सूर्य-मण्डल को बींध, सुक्षत्रियों की गति को प्राप्त हुए प्यारे—भीमसेन—के दर्शन नहीं कर सकता। वत्स ! भीमसेन !

स्तन मात का मैंने पिया पहले अनन्तर आपने,
मुझसे बचे रस से निजोदर-पूर्ति की प्रिय तात ने।
था यज्ञ में भी सोम-रस हमने पिया इस रीति से,
क्यों आज मुझसे पूर्व ही तुम सलिल पीते प्रीति से ॥३१

कृष्णा ! तुम भी जलाञ्जलि दो। (दासी का पानी लाना)

१—नीले कमल से समान आँखों वाला।

द्रौपदी—(समीप जाकर जलाञ्जलि भरकर) महाराज ? किसको जल-दान करूँ ?

युधिष्ठिर—

कर उसको जल-दान, सहसा जो सुर-पुर गया।
माता सखी-समान, गान्धारी की की रुला ॥ ३२ ॥

द्रौपदी—नाथ ! भीमसेन ! यह, परिजन से उपनीत जल, स्वर्गीय आपका चरणोदक बने !

युधि०—भीमसेन !

शपथ हुई नहि पूर्ण, स्वर्ग को तुम चल दिये !
दी अञ्जलि जल-पूर्ण, खुले-बाल ले प्यारि ने ॥३३॥

द्रौपदी—उठिये महाराज ? आपके भाई दूर जा रहे हैं !

युधि०—(दाईं आँख का फड़कना) पांचाली ? शकुन तो ऐसा कहते हैं कि तुम भीमसेन के दर्शन कर उसका सम्मान करोगो।

द्रौपदी—महाराज ! परमात्मा शकुन करे !

(नेपथ्य में कोलाहल का होना)

(आकर घबराया हुआ)

कञ्चुकी—बचाइयेगा, बचाइयेगा, महाराज ? यह दुरात्मा, कौरव-नीच, जिसका देह और कपड़े—सब खून में सने

हुए हैं, खून में सनी गदा को हाथ में ऊपर उठाये हुए—ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों, काल-दण्ड हाथ में लिये हुए, साक्षात् यमराज ही हो! यह पूजनीया पांचाली को इधर उधर ढूँढ़ता हुआ इस ओर आ रहा है।

युधि०—हाय! विधाता! तेरा सच्चा स्वरूप आज पहचान लिया, हा! गाण्डीवी अर्जुन? (अचेत हो जाता है)

द्रौपदी—हा! आर्यपुत्र? हा! स्वयंवर में मेरा हाथ अपने हाथ में लेने वाले प्यारे! तुमने, अपने प्यारे भाई का अनुसरण तो किया, पर महाराज और इस दासी की, बात तक नहीं पूछी।

युधि०—(सचेत होकर) हा, वत्स! अर्जुन! हा, भगवान् शङ्कर से बाहु-युद्ध करने वाले मल्ल? हा, निवात-कवचों को मार, देव-लोक को निष्कंटक बनाने वाले? हा, बदरिकाश्रम में तप तपने-वाले द्वितीय तपस्वी? हा, द्रोणाचार्य के प्रिय-शिष्य! हा, अस्त्र-बल तथा शिक्षा-बल से गाङ्गेय-भीष्म—को सन्तुष्ट करने वाले! हा, कर्ण-कुल-कमलिनी के ओस-बिन्दु! हा, गन्धर्वों से दुर्योधन को मुक्त कराने वाले? हा, पाण्डव-कुल-कमलिनी के राजहंस?

अति-स्नेह-मयी वह अम्ब न नम्र प्रणाम किया तुमने उसको,
भुज में भुज डाल मिले न मुझे, न कहा अथवा हमने तुमको।
वर-माल गले पहिनी जिससे, चिर-सङ्गिनि तात! किया जिसको,
पर-लोक गये किस हेतु धनञ्जय? आज अहो तजके इसको ॥२४॥

(अचेत हो जाता है)

कंचुकी—बड़े दुःख की बात है !—यह दुष्ट कौरवाधम, बे-रोक-टोक इस ओर ही चला आरहा है। बस ! यही समयोचित उपाय है। पूजनीया पांचाली को चिता के नज़दीक ले चलता हूँ। मैं भी यों ही पीछे २ चलता हूँ। (दासी के प्रति) भद्रे ! तुम भी रानी जी के भाई धृष्टद्युम्न, नकुल, और सहदेव से जाकर मिलो। महाराज के इस विपत्ति-काल में और भीमसेन और अर्जुन के अन्त होजाने के बाद, यहाँ, किससे त्राण की आशा की जाय ?

(नेपथ्य में कोलाहल के बाद)

अरे रे ! समन्त-पंचक में घूमने-वालो ! तथा रक्त की शराब पीने से उन्मत्त यक्ष, राक्षस, पिशाच, गृध्र, शृगाल तथा काक-गण।की अधिक संख्या-वाले का-पुरुषो ! हमे देख कर मत डरो। कहो पांचाली किस स्थान पर है ? मैं उसके चिन्ह बताता हूँ।

क्रीडा से जिसने दिया, जङ्घा पर कर-ताल।
दुर्योधन के सामने, खींचे वसनऽरु बाल ॥
दुःशासन ने हाथ से, खोला वेणी-बंध।
कृष्णा का किस देश से, है बोलो सम्बंध ॥ ३५ ॥

कंचुकी—हा, देवी ! याज्ञसेनी ! अब तुम अनाथ हो—यह जान कर कौरव-पिशाच तुम्हारा अपमान कर रहा है।

युधि०—(सहसा उठकर) पांचाली! मत घबराना, मत घबराना। कर अरे! कौन ?–कौन है यहाँ ? तूणीर-सहित मेरा धनुष ले आओ। दुरात्मा दुर्योधन ? आ, बाणों की बौछार से, तेरे, गदा-कौशल से पैदा हुए घमण्ड को दूर किये देता हूँ। और अरे! कुरु-कुल-नाशी ?

जरासंध-वैरी उसे, देख मरे प्रिय-बन्धु!
अथवा शङ्कर-भील से, लड़ने वाले बन्धु॥
कठिन-हृदय तुझसा नहीं, सकता असु जो धार।
कर सकता शर-जाल से, मैं तेरा संहार॥ ३६॥

(खून में सने तथा गदा हाथ में लिये भीम का प्रवेश)

भीमसेन—अरे समन्त-पंचक (कुरुक्षेत्र) में घूमने वालो!

राक्षस नहीं मैं भूत वा, [1]रिपु-रक्त-रञ्जित-गात्र हूँ,
तैरा [2]शपथ-जलनिधि गहन जिसने कुपित वह क्षत्र हूँ।
हे शूर-वीरो! मत डरो, रण-अग्नि-ज्वाला-जाल से,
अवशिष्ट फिरते जो छिपे [3]करि-तुरग-गण की ढाल से।
॥ ३७॥

आप लोग बतायें, पाचाली किस स्थान पर है ?

द्रौपदी—(सचेत होकर) बचाइयेगा, बचाइयेगा महाराज ?

---

१ शत्रु के खून से रंगे हुए देह-वाला। २ प्रतिज्ञा-रूपी सागर। ३ हाथी और घोड़े।

कंचुकी—देवी ? पाण्डु-वधू ! उठो, उठो । अब, जल्दी ही चिता में कूद पड़ना अच्छा है ।

द्रौपदी—(सहसा उठकर) क्यों ?—क्या अब भी चिता के समीप नहीं पहुँची ?

युधि०—कौन ?—कौन है यहाँ ? मेरा तूणीर-सहित धनुष ले आओ। क्यों ?—क्या कोई परिजन नहीं ? अच्छा ! बाहु-युद्ध से ही इस दुष्ट को, जोर से आलिङ्गन कर, आग में फेंके देता हूँ। (पेटी बाँधता है)

कंचुकी—देवी ! पाण्डु-वधू ! आँखों को ढकने वाले, दुःशासन से खींचे गये बालों को अब बाँधलो । प्रतिकार की अब बिलकुल आशा नहीं। बहुत जल्दी ही चिता के पास चली चलो ।

युधि०—कृष्णा ! उस नीच के बिना मरे,बाल कभी मत बांधना।

भीमसेन—(शीघ्र आकर) पांचाली ? मेरे रहते दुःशासन से खींची गई वेणी को, अपने हाथों से मत बाँधना । ठहरो, मैं स्वयं ही बाँधे देता हूँ ।

(द्रौपदी का भय के कारण पीछे हट जाना)

भीमसेन—ठहरो, भीरु ? अब कहाँ जाती हो ?

(केश पकड़ना चाहता है)

युधि०—(वेग से भीम का गाढालिङ्गन कर) पिशाच ! भीम, अर्जुन के शत्रु ? नीच, सुयोधन ?

शिशु-काल से तू ने किया प्रतिदिन नया अपराध है,
मारा धनंजय, भीम को निज-बाहु-बल-उन्मत्त है।
मम बाहु-पंजर में फंसा तू आतताई ! आज रे !
पद-मात्र भी सकता नहीं हिल तू यहाँ से पाप रे ॥३८॥

भीमसेन—अये, क्यों ?— आर्य, मुझे सुयोधन समझकर, क्रोध से मेरा कठोर आलिङ्गन कर रहे हैं ? आर्य ! शान्त हो जाइये, शान्त हो जाइये।

कंचुकी—(ग़ौर से देखकर हर्ष से) महाराज ? भाग्य से आप को वृद्धि होरही है। यह निश्चय ही आयुष्मान् भीमसेन हैं। इनका सारा शरीर दुर्योधन के खून में रँगा हुआ है। यही कारण है कि ये सहसा नहीं पहचाने जाते । अब संदेह करना व्यर्थ है।

दासी—(द्रौपदी का आलिङ्गन करके) रानी जी ? यह अग्नि-प्रवेश रहने दीजिये। यह निश्चय ही आपके स्वामी हैं, और अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर, चोटी बाँधने के लिये आप ही को ढूंढ रहे हैं।

द्रौपदी—हञ्जे ! मुझे झूठी बातों से क्यों बहला रही हो ?

युधि०—जयंधर ? क्या कहते हो ?—क्या यह भीम, अर्जुन का दुश्मन, दुष्ट दुर्योधन नहीं है ?

भीमसेन—देव ! अजात-शत्रो ? दुष्ट सुयोधन अब कहाँ ? मैं ने उस नीच का :—

तन फेंक भू पर यह लगाया, रक्त-चन्दन अंग में,
दी राजलक्ष्मी आर्य को जलनिधि-वृता-भू-संग में।
सह-भृत्य-योद्धा-मित्र कुरु-कुल है मरा युद्धाग्नि में,
तुम नाम राजन्! ले रहे जिसका जला क्रोधाग्नि में॥३९

(युधिष्ठिर का भीम को स्वेच्छा-पूर्वक छोड़ना तथा उसे देखते हुए आँसुओं का पोंछना)

भीमसेन—(पैरों में गिरकर) जय हो आर्य की!

युधि०—वत्स? आँखों में आँसू भरे होने के कारण, मैं तुम्हारे मुख-चन्द्र को नहीं देख पाता। कहो, क्या तुम और अर्जुन जिन्दा हो?

भीमसेन—सारे शत्रुओं का नाश होजाने के बाद, आपके राजा होजाने पर, भीमसेन और अर्जुन जीवित हैं।

युध०—(फिर गाढालिङ्गन करके) प्यारे भीम?

रहने दो रिपु-नाश को, कह दो सौ सौ बार।
सचमुच ही क्या भीम तुम, मारा बक दुष्वार॥

भीमसेन—आर्य? मैं वही हूँ।

युधि०—

१दु:शासन-उर-ताल में, जल कहँ २रक्त-प्रपात।
३तटाघात के खेल में, निपुण ४मकर क्या तात?॥४०॥

---

१ दु:शासन का वक्षस्थल-रूपी ताल। २ खून का झरना। रक्त-सँघात (पाठान्तर)। ३ किनारे का तोड़ना। ४ मगर।

भीमसेन—आर्य ! मैं वही हूँ। आर्य ! क्षण-भर के लिये मुझे छोड़ दीजिये।

युधि०—और क्या करना बाक़ी बचा है ?

भीमसेन—बड़ा भारी काम करना बाकी है। सबसे पहले सुयोधन के खून में सने इन हाथों से, दुःशासन से खींचे गये, पांचाली के बालों को बाँधता हूँ।

युधि०—आप जाइये। तपस्विनी वेणी-संहार-(वेणी-बन्धन)-का अनुभव करले !

भीमसेन—(द्रौपदी के पास जाकर) देवी ! पांचाली ! भाग्य से तुम्हारे सब शत्रुओं का संहार हो गया और अब तुम्हारे सौभाग्य का उदय हुआ है। खून में सने—मुझे देख कर मत घबराओ।

> खींची नृप-कुल-सामने, जिसने तू सुकुमारि !
> गाढ रक्त, कर में लगा, १पान-शेष छू प्यारि ॥
> तथा किया उरु-भङ्ग, दुर्योधन का अति मधुर।
> रुधिर लगा प्रति-अङ्ग, आग बुझे अपमान की ॥४१॥

बुद्धिमती। वह भानुमती कहाँ है ? अब, पाण्डव-रमणी का अपमान करे ! प्यारी, याज्ञसेनी ?

द्रौपदी—नाथ आज्ञा करिये।

---

१ पीने से बचा हुआ।

भीमसेन—तुम्हें याद है ?—मैंने कहा था—('भुज-दण्ड से चंचल'—(१। २१) इत्यादि पढ़ता है)

द्रौपदी—नाथ ? सिर्फ याद ही नहीं है। नाथ की दया से अनुभव भी कर रही हूँ।

भीमसेन—(चोटी फटकार कर) प्यारी ? कौरव-कुल की काल-रात्रि, दुःशासन से खोली गई इस वेणी को अब बाँधो।

द्रौपदी—नाथ ? मैं चोटी करना भूल गई थी ! आज फिर स्वामी के प्रसाद के सीखूँगी।

(भीमसेन का चोटी बाँधना)

(नेपथ्य में)

क्रुद्ध, बली जिसके खुलने से, पाण्डव ने नृप काल !
दिश दिश रिपु-कुल-सुन्दरियों के खोले सुन्दर बाल ॥
कुरु-कुल-नाशी,सखा मृत्युका,१कुपित-प्रिया-कच-जाल।
बांधा मैंने, नाश मिटे यह, टूटे दुख-जंजाल ॥ ॥४२॥

युधि०—देवी ! गगन-चारी सिद्ध-गण, तुम्हारे इस वेणी-बंधन का अभिनन्दन कर रहे हैं।

(कृष्ण और अर्जुन का प्रवेश)

कृष्ण—(युधिष्ठिर के समीप जाकर) भाइयों-सहित अखिल अरि-मंडल के विजयी, पाण्डव-कुल के चन्द्रमा, महाराज युधिष्ठिर की जय हो !

१—क्रुद्ध प्यारी के बालों का समूह।

अर्जुन—जय हो आर्य की।

युधि०—(देख कर) अये ! भगवान् पुण्डरीकाक्ष और वत्स अर्जुन हैं ! भगवान् ! भला कभी उसका की अमंगल हो सकता है ?—जिसका कल्याण, भगवान् पुराण-पुरुष नारायण खुद चाहते हों।

महदादि-कारण प्रकृति से—विक्षुब्ध हैं धारीं हरे !
ऋषिराज ? हरि-हर-ब्रह्म-आदिक मूर्तियाँ सारीं हरे !
यह सत्त्व-रज-तम-रूप तीनों गुण विभो ! तुम धारते,
हो सृष्टि-लय-कारण तथा तुम ही प्रजा को पालते॥
तुम हो अनादि अनन्त इससे हे हरे ! मरते न हो,
अति-सूक्ष्म हो तुम इसलिये मन में कभी आते न हो।
इन शुभ-गुणों से युक्त तेरे नाथ ! चिन्तन-मात्र से,
तरते दुखी-जन,क्या नहीं वे पासकें तव दर्श से ? ॥४३॥

(अर्जुन का आलिङ्गन करके) वत्स ! आओ। प्रेम से मिलें !

कृष्ण—महाराज, युधिष्ठिर जी ? अभिषेक के सब उपकरण सुसज्जित कर, ये भगवान व्यास, बाल्मीकि, जामदग्न्य, जाबालि आदि महर्षि और नकुल, सहदेव तथा सात्यकी आदि सेना-नायक और यादव-वंशी, मत्स्य-वंशी तथा मागध-वंशी राजकुमार, कंधों पर तीर्थ-जल के कलश रख, आपका राज्याभिषेक करने के लिये खड़े हैं। मैंने भी, जब यह सुना कि, चार्वाक ने आपके मन में भ्रम पैदा कर दिया है, अर्जुन के साथ यहाँ शीघ्र ही आया हूँ।

भीमसेन—(क्रोध से) कहाँ है वह कौरवों का मित्र नीच राक्षस?–जिसने कि आर्य के मनमें भ्रम पैदा कर दिया था?

कृष्ण—उस दुष्ट को नकुल ने मार डाला। तो कहिये महाराज? इससे अधिक और क्या आपकी इच्छा पूर्ण करूँ?

युधि०—भगवन्! पुण्डरीकाक्ष! भगवान् प्रसन्न होकर सभी कुछ देते हैं। मेरी तो साधारण पुरुषों जैसी बुद्धि है। इसलिये जो कुछ मिल गया—उसी में संतुष्ट हूँ। मैं इससे अधिक कुछ नहीं माँग सकता। देखिये,

मारे समर में क्रुद्ध हो रिपु पाण्डु-कुल व्रण-हीन है,
हत-द्यूत से उत्पन्न प्यारी-परिभवोदधि तीर्ण है।
तुम पुण्य से ही हे नरोत्तम! देव? सादर बोलते,
भगवन्! नहीं हम अन्य कुछ संतुष्ट तुमसे चाहते ॥४४॥
फिर भी यदि भगवान अधिक प्रसन्न हैं तो यह सही—
जीवें! पुरुष सौ साल तक, अकृपण, रुजा से हीन हों!
सब भेद भगवन्! भूल ईश्वर-भक्ति में संलीन हों!!
राजा प्रजा-प्रेमी, गुणी-जन-विज्ञ, विद्वद्बन्धु हो
निज-पुण्य से संतत धरालंकार करुणा-सिन्धु हो!! ॥४५

कृष्ण—एवमस्तु! (सबका प्रस्थान)

समाप्त